भगवान कहाँ हैं और कैसे हैं

अध्यात्म दर्शन

लेखक

अयोध्या प्रसाद श्रीवास्तव

फोन नं. **+97784420494**

www.ayodhyashrivastav.com

प्रकाशक :- बर्दियाली साहित्य समाज, गुलरिया,बर्दिया,नेपाल

copyright- लेखक में सुरक्षित

पुस्तक का मूल्य :- निशुल्क

भगवान कहाँ हैं और कैसे हैं

लेखक के दो शब्द

सुदामा सत्संग बृद्ध समूहके संस्थापक तथा समाज सेवी कवि गुरु श्री यज्ञ प्रसाद सुवेदी गम्भीर बीमारी और लगभग मृत्यु के निकट पहुँच रहे थे, उस समय भी उन्हे समाज की चिन्ता थी । समाज मे अन्याय, अत्याचार, पाखण्ड, भ्रष्टाचार, ठगी और पारस्परिक असहयोग बढ्ने का सबसे बडा कारण लोगों की धर्मविमुखता है और नया पुस्ता, विशेषतया युवा वर्ग, अपनी संस्कृति और धार्मिक भावनाओं और विचारों से अपनी दूरी बढाने लगा है इसलिए सामाजिक कुव्यवस्था फैली है । तसर्थ समाज को धर्म की आवश्यकता क्यों है और धर्म क्या है ? इसका उत्तर तब प्राप्त किया जा सकता है जब हम यह जान लें और विश्वस्त हो जायँ कि भगवान का अस्तित्व है और हमारे कुकृत्यों का दुष्परिणाम भी हमें भोगना पडेगा । इसको समझाकर एक छोटी सी पुस्तिका तयार करने का उनका अनुरोध मेरे लिए प्रेरणा और मार्गदर्शक हुआ । जिसमें गुलरिया निवासी श्री किशोर कुमार गौतम ने भी काफी कुछ सहयोग दिया ।

इस पुस्तकका उद्देश्य है - हिन्दू धर्म में आई हुई विकृतियों का उद्घाटन, अन्य प्रमुख धर्मो से सारभूत तुलना, भगवान के बारे में अध्यात्म और विज्ञान का समन्वय, ईश्वरीय शक्ति का रहस्योद्घाटन, भगवान के बारे में ठोस और सारगर्भित प्रमाण की प्रस्तुति, ईश्वर पर अटूट श्रद्धा और समर्पण से सकारात्मक परिणाम की प्राप्ति का आश्वासन ।

चूँकि आज का व्यक्ति अधिक मोटे ग्रन्थ पढ्ना पसन्द नही करता है, इसलिए मैने स्वयम् हिन्दू धर्म शास्त्र के मूल ग्रन्थों का अध्ययन और मनन किया , काफी कुछ सत्संग लाभ भी लिया और निचोड रुप में कम पृष्ठों में यह पुस्तक प्रस्तुत करनी पडी है इसलिए बहुत सी बातें अधूरी जैसी लगेंगी लेकिन समग्र निष्कर्ष में मैने इस बात पर बल दिया है कि दया, परोपकार, सहअस्तित्व, सत्य,अहिंसा, प्रेम, सेवा ईमानदारी, परिश्रमशीलता, सहयोग और समाजनिष्ठता मानव जीवन का आधार है इसी में मानव जाति का कल्याण है । धर्म इसी बात की प्रेरणा देता है । परब्रह्म परमेश्वर की शक्ति, आशीर्वाद हम तब प्राप्त कर सकते हैं जब हम समर्पित हो पाते हैं और उसकी प्रकृति के बारे में समझ पाते हैं ।

यह पुस्तक धर्म और भगवान के बारे मे उठ सकने वाले प्रश्न और शंकाओं का यथेष्ठ समाधान दे सके इसलिए इसे संवाद शैली में लिखा है । इसके पात्र सजीव व्यक्ति – मैं, मेरे परिवार के व्यक्ति, मित्रगण तथा श्रद्धा के व्यक्तियों को रखा गया है । पुस्तक में वर्णित प्रश्नोत्तर संवाद जिस किसी भी पात्र के मुखश्री से निकले हैं, वह सब रचना मेरी है, इसलिए इसमें व्यक्त विचार सम्बन्धी सम्पूर्ण दायित्व मेरा ही है ।

यह पुस्तक अध्यात्म दर्शनपर लिखी हुई एक अनुसन्धानात्मक कृति है । इसके लिए विभिन्न धर्म ग्रन्थों का अध्ययन के साथ साथ विभिन्न धर्मगुरु और प्राध्यापक तथा अन्य कई लोगों से काफी वार्तालाप करने के बाद इसमें विचार प्रवाहित किए गए हैं इसलिए वार्तालाप में सलग्न व्यक्ति, धर्मग्रन्थ और कई पुस्तकें जिसमें विवेकानन्द साहित्य, धर्म और विज्ञान तथा एकात्म मानव दर्शन दीन दयाल स्मृति व्याख्यान २५ सेप्टेम्बर २००४ से इस पुस्तक के भाग ३-४ में काफी कुछ उधृत किया गया है इस लिए इन सभी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ तथा पुस्तक प्रकाशक बर्दियाली साहित्य समाज, तथा अध्यक्ष श्री इन्द्रराज पौडेल, प्राध्यापक श्री राजेन्द्र धिताल, पुस्तक का कलेवर और कम्प्यूटरका समस्त कार्य करनेवाले श्री प्रभात सुवेदी तथा सहयोगी मित्र गणों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ ।

पुस्तक में हुई त्रुटियों को कृपापूर्वक जानकारी कराने का कष्ट करेंगे ताकि भविष्य में मार्गदर्शन हो सके पाठकों के सल्लाह और सुझाव का आदर करने की प्रतिबद्धता प्रकट करता हूँ ।

भवदीय

अयोध्या प्रसाद श्रीवास्तव

गुलरिया, बर्दिया (नेपाल)

फोन ००९७७-८४४२०४९४

E-mail-ayodhya.p.shrivastav@gmail.com

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१. वेद (ऋग, यजुर, साम और अथर्ववेद)– वेद व्यास

२. मनुस्मृति – आचार्य मनु

३. श्रीमद्भगवत गीता – महाभारत

४. गायत्री महाविज्ञान - पं. श्रीराम शर्मा आचार्य

५. वेदों का दिव्यसंदेश – " " "

६. कर्मकाण्ड भास्कर – " " "

७. गुरु नानक देव – " " "

८. गहनाकर्मणे गति – " " "

९. ईश्वर कौन है, कहाँ है और कैसा है – " " "

१०. अर्थशास्त्र - (कौटिल्य)

११. सत्यार्थ प्रकाश - महर्षि दयानन्द सरस्वती

१२. दर्शन शास्त्रकी रुपरेखा - प्रोफेसर डा. राजेन्द्र प्रसाद

१३. कल्याण - गीता प्रेस गोरखपुर

१४. सत्यके प्रयोग आत्मकथा - मोहनदास कर्मचन्द गाँधी

१५. द प्रिन्स - मैकिया वेली

१७. श्री राम चरित्र मानस - गोस्वामी तुलसी दास

१७. पंच तंत्र – श्री विष्णु शर्मा

१८. भर्तृ हरि शतक - राजर्षि भर्तृहरि

१९. धर्म और विज्ञान तथा एकात्म मानव दर्शन - दीन दयाल स्मृति व्याख्यान

२०. Identity and Violenei-the Illustration of destiny (डा. अमर्त्य सेन (नोबेलपुरुस्कार प्राप्तकर्ता)

२१.दुर्गा सप्तशती

२२.महाभारत वेद व्यास

२३.आत्रेय स्मृति अत्रि

२४.विवेकानन्द साहित्य अद्वैत आश्रम कलकत्ता

श्री गणेशाय नमः

भूमिका

भारतके उत्तराखण्ड में अवस्थित हिन्दुओं का महातीर्थ भगवान बद्रीनाथ और केदारनाथ के दर्शन के लिए प्रत्येक वर्ष लाखों की संख्या में भक्तजन जाते हैं । यमुनोत्री से केदारनाथ तक के सयकडों माइल के रास्ते में लाखों यात्रियोंका आवागमन होता रहता है । यमुनोत्री से गंगोत्री होते हुए गौरीकुण्ड पहुँचकर केदारनाथ की यात्रा होती है और अंत में बद्रीनाथ की यात्रा होती है । हरिद्वार-ऋषिकेश होते हुए मन्दाकिनी नदी के किनारे किनारे चलकर रामबाडा पहुँचने के बाद गौरीकुण्ड आता है फिर वहाँ से लगभग एक कि.मी. आगे भगवान गणेशका मुडकटिया मंदिर है । इसी छोटे से मन्दिर से विधिवत तीर्थयात्रा की शुरुवात होती है और चौदह कि.मी. आगे केदारनाथ पड्ता है । केदार नाथ पाण्डओं की तपस्थली मानी जाती है । जहाँ भगवान शिव **"नन्दी"** बैल के रुप में विराजमान थे । भगवान शिव का शिर काठमाण्डू में भगवान पशुपति नाथ, कन्धे की चोटी केदारनाथ और पुठ्ठा बदरीनाथ तथा बाकी भाग अमरनाथ को माना जाता है । केदारनाथ को पंच केदार भी कहते हैं ।

हरिद्वार-ऋषिकेश होते हुए यमुनोत्री से बद्रीनाथ तक के रास्ते, मन्दिर, नदी नाले के किनारे और पहाड की चोटियाँ श्रद्धालु भक्तों से खचाखच भरी होती हैं । जोशी मठ और चट्टियों में भारी भीड होती है ।

१४ जून २०१३ जबकि यह तीर्थ यात्रा जारी थी, २-३ दिन पहले से मौसम खराब था लेकिन १४ जूनको वर्षात तेज हुई और मूसलाधार पानी बरसने लगा १५ और १६ जून तक लगातार वर्षा होती रही । ऐसा लग रहा था जैसे द्वापर युग में इन्द्र ने वृज पर कोप करके पानी बरसाया था, उसी महाप्रलयका दृश्य दिखने लगा । तेज हवा और मूसलाधार वारिश से पहाडकी चट्टानें खिसकने लगी आदमी, घर, पशु, मठ मन्दिर बहने लगे । पर्वत शिखर और गाँव बजार ध्वस्त होने लगे । जो पहाडों पर थे वे भूस्खलन से नीचे बहकर दब गए और जो नीचे मैदान में थे वे पानी की अधिकता और ऊपर के भूस्खलन के नीचे बह गए । चौतर्फी चीटियों की तरह दिखनेवाले यात्री यत्र तत्र भागने लगे, लेकिन कोई जाय तो कहाँ जाय ? जो जहाँ गया वहाँ भी विकराल मृत्यु ही मिली ।

प्रत्येक व्यक्तिको मृत्यु दीखने लगी केदारनाथ तक पहुँचने के लिए मंदाकिनी नदी पर बना हुआ लोहे का पुल भी टूट गया और पुल पर खडे हुए हजारों लोग एक साथ नदी में बहने लगे । तमाम जगहों पर भूस्खलन होने से सडकें, पुल, पगडण्डियाँ सब ध्वस्त हो गईं । बिजली, तार टेलीफोन सब बन्द हो गया इसलिए कहाँ क्या स्थिति है यह भी जानकारी में आना बन्द हो गया । एक गाँवका दूसरे गाँव से सम्बन्ध विच्छेद हो गया । कोई किसीकी रक्षा करने में सक्षम न रहा । प्रत्येक व्यक्ति स्वयँ असहाय और असुरक्षित था । लगभग सभीलोग मृत्यु की संभावना देख रहे थे इसलिए सबके चेहरे पीले पड गए थे । अब तो केवल अपना अपना भाग्य और केवल ईश्वर का सहारा ही शेष बचा था । आदमी के हाथ में कुछ शेष नही बचा था । इतना शक्तिशाली इन्सान भी प्रकृति के सामने इतना निरुपाय हो सकता है ? यह बात अब स्पष्ट हो गई थी । उस भीषड वर्षात में कुछ लोग गणेश मन्दिर में शरण लिए हुए थे । काफी भीड थी । उसी भीड में से किसी ने हताश होकर कहा "हे भगवान रक्षा करो" । उसी भीड मे शरण लिए हुए एक नवयुवक ने जो बहुत हताश और निराश था तथा देव दर्शन करने पर भी इस विपत्तिके आगमन से क्रुध हो रहा था, उसने कहा "कौन भगवान ? केदारनाथ भगवान, बद्रीनाथ भगवान, कि इस मन्दिर के ये गणेश भगवान ?" किसको पुकारा आपने ?

इसी विषय में कुछ लोगों के बीच तर्क वितर्कपूर्ण वार्ता होने लगी ।

उस वार्ता में सम्मिलित एक युवक जो २४/२५ वर्षका उच्च शिक्षा प्राप्त है, आशुतोष । जो प्रत्यक्षवाद और ईश्वरवाद के बीच में ढुलमुल हो जाता है और ईश्वरके अस्तित्वके बारे में जिज्ञासु है । दूसरा युवक २६-२७ वर्षीय आदित्य है जो विज्ञानका शिक्षक है । यह ईश्वर की सत्ता में विश्वास तो करता है लेकिन दृढ नही हो पा रहा है और दुष्टों को भगवान दण्ड क्यों नहीं देते हैं इस बातको लेकर चिन्तित रहता है । यह धर्म कर्म में खूब रुचि लेता है लेकिन ईश्वर की न्याय और दण्ड वयवस्था के प्रति जिज्ञासु है । तीसरा व्यक्ति प्रौढ अवस्था के रामजी है, जो ईश्वर प्रति आस्थावान तो हैं, लेकिन धर्म भीरु है, इनका मत है कि ईश्वर को प्रशन्न कर मिले तो आनन्द प्राप्त होता है । चौथे व्यक्ति करिब ७५ वर्षीय किशोर नाम के व्यक्ति हैं । यह समाजनिष्ठ और लोकसेवी हैं ।

पाँचवे व्यक्ति ८०-८५ वर्षीय एक वृद्ध हैं । वे ज्ञानी और तत्व वेत्ता हैं । ईश्वरके एकत्ववादी सिद्धान्त में निष्ठा है, श्रीमद्भगवतगीताके जानकार हैं । कई पुस्तकें लिख चुके हैं अब सन्यास ग्रहण कर लिया है और इसी गणेश मन्दिर में रहते हैं ।

इसी तरह उस भीड में श्याम, उमा, गायत्री, रमेश, माधव, कंचन, गुंजन, दीपक, रुपक, प्रियंका और नीलू नाम के जिज्ञासु तथा तमाम तीर्थ यात्री भेड बकरियों की तरह कुछ मन्दिरके कमरे में कुछ मन्दिर के पोर्टिको और छज्जा के नीचे खडे भीग रहे हैं ।प्रथम नवयुवक आशुतोष ने लाखों तीर्थयात्रियों के ऊपर आन पडा हुआ महान संकट से उद्विग्न होकर जो प्रश्न किया और उसके बाद प्रश्नोत्तरी का जो क्रम चला उससे निकलनेवाला निष्कर्ष और सत्य तथ्य निम्नानुसार है -

अध्याय - १

बहुईश्वरवाद

आशुतोष का प्रश्न हिन्दुओं में प्रचलित बहुदेववादी सिद्धान्त पर ही अप्रत्यक्ष रुप से एक प्रहार था । इसलिए तत्काल कोई व्यक्ति कुछ नहीं बोला । तब उसने अपने पूर्व प्रश्न में जोडकर पुनः प्रश्न किया ।

आशु : हमारे तो ३३ करोड देवता हैं । आकाश, मेघ, वरुण, धरती, वन, वृक्ष, पहाड, नदी, सूर्य, चन्द्र, तारा, पानी सब देवता ही तो हैं । और जब यही लोग आदमी को मारना शुरु कर दें तो अब शिव या गणेश जैसे किस भगवान से रक्षा के लिए पुकार करें ।

चारों ओर घनघोर वर्षा हो रही थी भेड बकरियों की तरह बहुत कम जगह में बैठे हुए लोगो का चेहरा बिजली की चमक में पीला पीला दिख जाता था । सभी लोग मृत्यु भय से ग्रसित होनेके कारण कोई बोल नही रहा था । लेकिन आशु के दुबारा प्रश्न करने पर रामजीने मुख खोला ।

रामजी : यदि तुमने ईश्वरका स्वरुप क्या है ? यदि यह जिज्ञासा उठाई है तो इस विषय में दो सिद्धान्त हैं (१) अनेकेश्वरवाद (Poletheism) और दूसरा एकेश्वरवाद (Monotheism) । प्राचीन काल में जब मनुष्य जंगली अवस्था में था, भाषा, घरबार, परिवार और वस्त्र विहीन था और उसकी विचार शक्ति भी प्रारम्भिक अवस्था में नितान्त कम थी । उस परिस्थिति में उसने विभिन्न देवताओं का श्रृजन किया था । वहीं से जो प्रचलन शुरु हुआ, उसने विश्वासका रुप ग्रहण कर लिया था । ये सभी देवता परम शक्तिशाली माने जाते हैं । देवता खुश हुए तो मानव कल्याण होता है और नाखुश हुए तो हानि । इसलिए आदमी इनकी आराधना करता है और अपने से जो काम सरलता से नही हो सकता है वह देवता कर देते हैं ऐसा विश्वास किए होता है । ऐसे अति प्राचीन धर्मको अनेकेश्वर वादी धर्म कहा गया था । लेकिन उस प्राचीन धर्म में ईश्वर एक से अधिक होते थे अर्थात प्रत्येक देवता स्वयं ही ईश्वर था । अब तो उस अनेकेश्वरवाद का प्रचलन कहीं किन्ही आदिवासी, जंगली कबीला जैसे किसी समाज में होगा तो होगा अन्यथा अब तो अनेकेश्वरवाद का प्रचलन नहीं है । इसकारण अब अनेकेश्वरवाद की बात न करें । अब तो बहुदेववादी एकेश्वरवाद की मान्यता है (बहुदेववाद अनेकईश्वरवाद नहीं, है इसे ध्यान रखना है)। ऋग्वेदके प्रथम मण्डल के सूक्त १६४ के ४६ वें श्लोक :-

इन्द्रं मित्रं वरुण मग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान ।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यम मातरिश्वानमाहुः ॥

(विद्धान एक ही सत्य स्वरुप ईश्वरका विभिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं । उनको ऐश्वर्य सम्पन्नता के कारण इन्द्र, हितकारी होनेके कारण मित्र, श्रेष्ठता के कारण वरुण, तथा प्रकाशक होनेके कारण अग्नि कहा जाता है । ये परमात्मा पूर्ण रुपेण पालनकर्ता होने के कारण सुपर्ण और गरुत्मान हैं ।)

वेद अग्नि, सूर्य, इन्द्र, चन्द्र, वरुण, गाय, आदि तमाम देवी देवताओं की स्तुति से भरे हैं, इसलिए हिन्दू अध्यात्म दर्शन बहुदेववादी है और इन सभी देवताओं के स्मरण पूजन करने से लौकिक और पारलौकिक कार्यो की सिद्धि होती है ।

आदित्य : अनेकेश्रवाद और एकेश्वरवाद में अधिक उपयोगी और प्रभावकारी कौन सा वाद है ?

रामजी : एकेश्वरवाद में एक ईश्वर के अलावा और किसीको नहीं माना जाता है । ईश्वर ही सर्वोच्च और अन्तिम एक मात्र शक्ति है । इसलिए इस चिन्तन में निरंकुशता है लेकिन इनके अनुयायियों मे संगठन और एकता बहुत मजबूत होती है ।

आज प्रचलित बहुदेववाद मे (अनेकेश्वरवाद की बात नही है, उस सन्दर्भको मैं पहले ही खतम कर चुका हूँ) भी ईश्वर एक परम शक्ति है । इस संसार के विविध रुप में अभिव्यक्त चीजें सब ईश्वर के ही रुप हैं । लाभ, हानि, जीवन, मृत्यु, सुख, दुःख, भव व्याधि सब ईश्वर ही है ।

आदमी को जीवन में तमाम काम, व्यवहार और समस्याओं का सामना करना पडता है । इस कारण उसे परिस्थितिजन्य आवश्यकतावश तरह तरह की मानसिकता, शक्ति और सामर्थ्य की आवश्यकता पडती है । कहीं गणेश जैसे बिघ्न नाशक, कहीं हनुमान जैसा बल, कहीं दुर्गा जैसी शक्ति, कहीं सरस्वती जैसी बुद्धि, कहीं राम जैसी सौम्यता और कहीं कृष्ण जैसी कूटनीति में प्रवेश करना पडे तो इन विभिन्न देवताओं में से अपने आवश्यकतानुसार भगवान के किसी भी रुप को या अधिक रुपों की उपासना करके अपने शरीर, मन और मस्तिष्क को उपस्थित परिस्थितिका मुकाबला करने के लिए बलवान बना सकता है ,स्वयं में क्षमता वृद्धि कर सकता है । रुप और प्रकृति के अनुसार देवता की संख्या अधिक दिखाई पडती तो है पर भगवान एक मात्र है । ईश्वरीय शक्तिका रुपान्तरण देव शक्ति होती है । इस प्रकार इसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी मानसिकता, रुचि और आवश्यकतानुसार ईश्वरका किसी रुपका चयन कर उपासना कर सकता है । इसलिए यह नितान्त प्रजातान्त्रिक और उदारवादी चिन्तन है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इसमें अपनी भूमिका प्राप्त कर सकता है । अर्थात कोई व्यक्ति भी धर्म से निराश होने, उपेक्षित होने और अपनेको अलग थलग महसूस करने का खतरा नही रह जाता है । सभी प्राणी धर्ममय जीवन जी सकते हैं । इसी कारण से हिन्दू वाङमय में बहुदेववाद की स्थापना

हुई है । यद्धपि इस उदारवाद का नाजायज फायदा उठाने वालों ने इसे विषाक्त कर दिया है ।

अब इस हिन्दू धर्म के प्रति उत्सुकता और श्रद्धा में नितान्त कमी दिखाई देती है । अधिकतर हिन्दू तो दशहरा दीपावली जैसे पर्वों पर ही मन्दिर जाते हैं । और उनलोगों में भी अधिकांश की उत्सुकता और सक्रियता, नेपाल की बात करें तो प्रायः मांसाहार के लिए होती है और वैसे भी इस में नये नये व्यंजनों के खानपान तथा वस्त्र आभूषण के खरीद के कारण ही उत्सुकता और उमंग बढी हुई दिखती है ।

आदित्यः हिन्दुओं में नीची ऊची जाति और छुवाछूत है फिर भला सभी मनुष्य कैसे एक साथ धार्मिक अभ्यास कर सकते हैं ,कैसे महान बन सकते हैं ?

रामजीः वेद में ऐसा कुछ नही है । दास युग में जो विकृतियाँ जन्मीं बाद में उस को शास्त्रों में एतिहास के तौर पर स्थान दिया और कुछ दुष्टों ने शास्त्रों से छेडछाड भी की है । इसलिए शास्त्र विषाक्त हो गए हैं ।

पहले बात समझो । ऋषि का अर्थ है पवित्र आत्मा, इसका अर्थ है मन्त्रद्रष्टा, अर्थात जिसने किसी तत्वका दर्शन किया है । जो पंचेन्द्रिय की सीमा के परे जा सकता है, जिसने आध्यात्मिक सत्य का अर्थात धर्म का साक्षात्कार कर लिया है, वह ऋषि होता है चाहे वह जन्म से मलेच्छ ही क्यों न हो । जारज पुत्र वशिष्ठ,धीवरपुत्र व्यास और दासी पुत्र नारद उदाहरण हैं । सच्ची बात यह है कि सत्य का साक्षात्कार हो जाने पर सभी भेद समाप्त हो जाते हैं । वेद हमारा प्रमाण है और वेदों पर सबका अधिकार है ।

यथेमां वाचं कल्याणीमावादानि जनेभ्यः ।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥

–शुक्लयजुर्वेद, मध्यान्दिनीया शाखा, अध्याय २६,श्लोक २

हाँ, पुराण में लिखा है कि वेद की अमुक शाखा में अमुक जाति का अधिकार है लेकिन वेद में ऐसा कुछ नही है और स्मृति, पुराण तन्त्र आदि केवल वहाँ तक ग्राह्य हैं जहाँ तक वे वेद की परिधि में रहते हैं । वे यदि वेद से हटकर वेद के विरुद्ध कुछ कहते हैं तो वे अमान्य हो जाते हैं ।

महाभारत के १२।१८८ और आत्रेय स्मृति के १४१ और १४२ में लिखा है

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्चयेत ।

वेदपाठी भवेद् विप्रः ब्रह्मा जनाति ब्राह्मणा ॥

अर्थात जन्म से तो हर व्यक्ति शूद्र ही है लेकिन संस्कार उसे ब्राह्मण बनाते हैं । यद्यपि यह वेद वचन हैं तो भी जन्म के आधार से **ब्राह्मण होनेका प्रचलन है ।** यह प्रचलन बहुदेववाद का ही दुष्परिणाम है । यदि इसकी विकृतियों को हटाया जा सके तो बहुदेववाद अत्यधिक उपयोगी और व्यवहारिक दर्शन है ।

आशु: यदि आदि मानव ने ज्ञान के अभाव में प्राकृतिक प्रकोप अथवा अन्य विपत्ति के डर से देवी देवता की कल्पना की है तो अब तो ज्ञानका स्तर और विज्ञानकी खोज बहुत विकसित हो चुकी है । ऐसी अवस्था में तो देवी देवता की कल्पना तो निरर्थक हो गई है और वेदों को भी अनुपयोगी कहा जा सकता है । तब तो देवता और वेद पुराणों की मान्यता में भी दुविधा पैदा हो जाती है ।

रामजी : इस श्रृष्टि के आदि कारण परब्रह्म परमेश्वर की एक सत्ता विद्यमान है । उसी की प्रेरणा से आदि मानव ने देवी देवताओंका अस्तित्व जाना था । आदि मानव ने काल्पनिक देवी देवता बनाया नहीं है । अपितु विद्यमान शक्ति के बारे में ज्ञान प्राप्त किया है । उदाहरण के लिए इन्ही गणेशजी की पत्थर की मूर्ति देखें । मूर्तिकार ने पत्थर से गणेश की मूर्ति बनाई नहीं है, उसने तो एक बडे पत्थर में विद्यमान गणेश की मूर्ति के चारों तरफ जो अनावश्यक पत्थर लगा था उसको काटपीट करके हटाया भर है । मूर्ति तो पत्थर में थी ही उसकी सफाई हुई तो वह प्रकट हो गई । तसर्थ मूर्तिकार इसका निर्माता नहीं प्रकटकर्ता भर है । इसी प्रकार आदि मानवने देवताओं के अस्तित्वका प्रकटीकरण किया है ।

आशु : चलो मान लिया । पत्थर में गणेश जी की मूर्ति थी और मूर्तिकार ने उसे प्रकट कर दिया । लेकिन वह तो गणेशजी के जगह पर विष्णु अथवा हाथी, घोडा किसी भी जीव जन्तु या जो कुछ भी प्रकट कर सकता था । अर्थात रचनाकार तो मानव बुद्धि को ही मानना पडेगा न ?

रामजी : मानव बुद्धि के पीछे प्रेरणा तो भगवान की ही है । श्रीमद्भगवद्गीता में इसका प्रमाण है ।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानम्पोहनं च ।

वेदैश्च सर्वेरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥

गीता १५/१५

(मै ही सभी प्राणियों के हृदय में अन्तरयामी होकर निवास करता हूँ और मुझसे ही स्मृति, ज्ञान और बुद्धि में उत्पन्न होनेवाले विकारों को हटाने का काम होता है । सभी वेदों में जानने योग्य मैं हूँ और वेदान्त का कर्ता और ज्ञाता भी मैं ही हूँ)

आशु: तब तो और भी समस्या खडी हो जाती है । इस अर्थ में प्राणी तो स्वयं न तो किसी काम का विचार करता है और न तो कोई काम करता ही है । सभी कुछ तो ईश्वर की इच्छा से ही हो रहा है ?

उस भीड में बैठे हुए माधव नाम के व्यक्ति आगे बढकर उत्तर देनेको तत्पर हुए ।

माधव : ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान है । ईश्वरकी इच्छा बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता है । लेकिन ईश्वर कल्याणकारी शक्ति है । इस लिए वे न तो अशुभ कर्म करने की प्रेरणा देते हैं और न तो स्वयं अशुभ कर्म करते ही हैं । आदमी ईश्वर की इच्छा से बँधा हुआ है । लेकिन वह कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है । वह दश इन्द्रिय और एक मन के सहारे से चिन्तन करता है और काम करता है । लेकिन उसके पूर्व जन्मके कर्म के परिणाम स्वरुप उत्पन्न होनेवाला "प्रारब्ध" चिन्तन और कर्म को प्रेरित करता है । इस बातको ऐसा भी कह सकते हैं कि हृदय में रहने वाला ईश्वर आदमी को सद्विवेक से काम करने के लिए प्रेरित करता रहता है, लेकिन मन लोभ मोह के वशीभूत होकर विवेक के ऊपर पर्दा डालता रहता है । और आदमी भावना में बहता हुआ काम करता रहता है । इसलिए आदमी काम करने को स्वतन्त्र तो है लेकिन उसका फल पानेके लिए बाध्य भी है । श्रीमद्भगवद्गीता में लिखा है -

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य श्रृजति प्रभु :।

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥

- गीता ५/१४

(परमेश्वर आदमी के न तो कर्तापन के न कर्म के और न कर्मफल के संयोग की रचना करते हैं । मनुष्यको तो उसका स्वभाव ही परिचालित करता है)

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत ।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥

गीता ३।५

(निसंदेह कोई भी व्यक्ति किसी भी काल में क्षण मात्र भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता है । क्योंकि समस्त मानव समुदाय प्रकृतिजन्य गुणों के द्वारा परवश होता रहता है और कर्म करने के लिए बाध्य रहता है)

आशु : इसका अर्थ तो यह हुआ कि मानव मन भगवान की इच्छा से भी अधिक शक्तिशाली है । प्रकृति और प्रकृति के गुण भी भगवान से अधिक शक्तिशाली हैं । तो भगवान सर्वशक्तिमान कैसे हुए ?

माधव : भगवान सर्व शक्तिमान ही हैं । भगवान ने स्वयं **श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय १० के श्लोक संख्या २१ से ४० तक** प्रकृति, चराचर ब्रह्मा, विष्णु, महेश, वेद, विद्या, मृत्यु, दण्ड और सभी अनन्त विभूतियों का स्वामी भी मैं ही हूँ कहा है । आदमी के मन और प्रकृतिके गुण के संयोग से यह संसार क्रियाशील हो रहा है

ईश्वर ने इनको स्वतन्त्र छोड रखा है लेकिन अन्तिम सत्ता तो ईश्वर में ही नीहित है । और जहाँ तक प्रकृति की सर्वोच्चता की बात है ,तो हम यह क्यों भूल जाते हैं कि प्रकृति भी तो ईश्वर का प्रत्यक्ष और विराट रुप ही तो है न ?

इस व्याख्या से आशुतोष को संतुष्टि मिली या नहीं लेकिन उसने कोई दूसरा प्रश्न नहीं किया । उसके चुप होते ही भीड में से एक लडकी बोली -

कंचन : परमात्मा की शक्ति ही अन्तिम शक्ति है इस बात को तो हमलोग मानते ही हैं लेकिन देवी देवता की तमाम मूतियाँ होती हैं इसलिए जब हम मन्दिर जाते हैं तो उन सभी प्रतिमाओं को थोडा थोडा नमन वन्दन करते हैं । भगवान के किसी एक ही स्वरुप को स्पष्टतया हृदय में बिठाकर एकाग्र नही हो पाते हैं । इस कारण हमारी आराधना तो हो ही नहीं पाती है केवल मूर्ति के दर्शन भर होते हैं, औपचारिकता और चिन्ह पूजा ही हो पाती है । तब तो हम स्वर्ग और मुक्तिका रास्ता ही नहीं पकड पाते हैं । फिर तो इस तरह मन्दिर-मन्दिर दौडने से क्या लाभ ? आज की यह प्राण संकटकी अवस्था ऐसे ही तो आई है ।

प्रश्न गम्भीर था । सब चुप रहे । कुछ देर बाद उसी भीड में से एक प्रौढ नवयुवकों की बहस में रुचि लेते हुए बोले -

किशोर : हाँ, मेरा तो यही कहना है कि ईश्वर तो प्रत्येक प्राणी की आत्मा में ही है । हमें अपनी अन्तरआत्मा में ईश्वर की तलाश करनी चाहिए, उससे साक्षात्कार करना चाहिए और उसी में रम जाने पर आत्मकल्याण हो सकता है, मोक्ष प्राप्ति हो सकती है । इसके लिए ध्यान एक सशक्त माध्यम है, और ध्यान किसी एक ही प्रतीक पर केन्द्रित होना चाहिए । ध्यान एक से अधिक प्रतीक पर केन्द्रित हो ही नहीं सकता है । इसलिए किसी एक ही प्रतीक चिन्ह, चाहे कोई भी चीजवस्तु – प्रकाश, सूर्य, चन्द्र जो भी हो, उसके माध्यम से ध्यान में प्रगाढता लाई जा सकती है । और जब ईश्वर से साक्षात्कार हो जाता है तब उस माध्यम की आवश्यकता नही रह जाती है वह माध्यम या तो स्वतः बीच से हट जाता है, और न हटे तो उसे हटा देना चाहिए । इसलिए ईश्वर प्राप्ति के लिए तो **"ॐ"** में ध्यान ही पर्याप्त है । इस तरह से मूर्तियों के मन्दिरों में आने जाने से भगवान नहीं मिल सकते हैं, हाँ एक आध्यात्मिक लाभ अवश्य है । यह भ्रमण निरर्थक तो है ही नहीं ।

गुंजन नाम की दूसरी किशोरी ने प्रश्न किया -

गुंजन : तो जब भगवान की प्राप्ति ही नहीं होती है तो यह धक्का मुक्की दुख कष्ट क्यों सहा जाय ? ऐसी तीर्थयात्रा से क्या लाभ होता है ?

किशोर : तीर्थाटन का बहुत बडा महत्व है । इससे देश दर्शन होता है, सामाजिकता की भावना का विकास होता है, समाजनिष्ठता , उदारता और सेवा

भाव जागता है ।आदमीको नये नये ज्ञान प्राप्ति का अवसर मिलता है । तीर्थाटनका मतलब किसी जगह पर जाकर वापस आना ही नही है, अपितु समाजनिष्ठता का अभ्यास करना चाहिए । हमारे समाज में जब ६०-७० वर्ष की उमर हो जाती है तब तीर्थाटन की अवस्था होने की मान्यता है और तब मूर्तियों का दर्शन करके, नदियों में नहा करके अपनेको भाग्यशाली मानते हैं, गर्व करते हैं । लेकिन यह तो सोंच ही गलत है । तीर्थाटन तो सीखने की उम्र में ही होनी चाहिए । इससे अपने आचरण की शुद्धिकरण होती रहती है और भविष्य किसी निश्चित रेखा पर चलने लगता है । लेकिन हम लोग अज्ञानता के अंधेरे में भटकते हुए, अनुमान के आधार पर लक्ष्य और आचरण अपनाते हुए, तमाम गल्तियाँ, अनियमितताएँ और असामाजिक काम करते हुए जब हम बूढे होने लगते हैं, हमारी आखें, दाँत, कान, और पूरा शरीर कमजोर होने लगता है तब हम तीर्थाटन अर्थात सेवा और परोपकार की शिक्षा प्राप्ति और इसके अभ्यास के लिए बाहर निकलते हैं और भटकते रहते हैं । ऐसे समय की यात्रा तो कष्ट कारक ही होगी । इस अवस्था में तीर्थाटन करने पर जब वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है, और अपने जीवन में किए हुए कामों से तुलना और किए हुए व्यभिचारों की याद करके तो मन और भी खिन्न हो जाता है । लेकिन समस्या यह रहती है कि गल्ती सुधारने का और अच्छे काम करनेके लिए तो न समय बचा होता है न तो शक्ति ही बची होती है । तब तो आत्मग्लानि ही होती है ।मन खिन्न रहने लगता है । शायद इसी अवस्थाको नर्क भी कह सकते हो । इस कारण तीर्थाटन तो सीखने की उमर में ही करना चाहिए और जानकारी वा ज्ञान की अभिवृद्धि करते हुए अपने आचरण को शुद्ध करते हुए अपने जीवन की दिशा सही रखनी चाहिए ।

दूसरी बात , यह जनधारणा है कि देवी देवताओं का दर्शन , भजन , कीर्तन , पूजन व्रत उपासना आदि कर्मों को करने से मरने के बाद स्वर्ग का रास्ता खुल जाता है, अन्यथा नर्क में दुख होता है । अर्थात भगवान से नजदीक होने वाले कर्म करने से सुख और वैसा न करने से दुख होता है । यह सोंच गलत है । वास्तव में भगवान को इन्सान से अपनी पूजा, उपासना,व्रत तीर्थाटन ,आदि कराने की भला क्या आवश्यकता है । ये कर्म तो आदमी के आचरण , आदत , चिन्तन और स्वभावको विवेकपूर्ण , लचीला , मधुर और समाज के लिए उपयोगी बनाने के लिए किए जाने वाले काम और सकारात्मक परिवर्तन के साधन हैं । इसके साथ साथ इससे संगठन निर्माण भी होता है । इन कामों को करते हुए यदि आदमी के चिन्तन और चरित्र में कल की अपेक्षा आज और आज की अपेक्षा आगे आने वाले दिनों में यदि समाज के हित में सकारात्मक परिवर्तन नही आ रहा है तो यह मान लें कि हमारी उपासना में कुछ खोट है, निजी स्वार्थ,मनोरंजन,या अपने बडे आदमीपन या

धार्मिक होने का प्रदर्शन भर है और हम केवल चिन्ह पूजा लोक व्यवहार का निर्वाह या दिखावा ही हर रहे हैं और इस से किसी को कोई लाभ नही हो सकता है ।

एक बार की बात है, मै रेल यात्रा में था । एक स्टेशन पर गाडी रुकी जहाँ सिख समुदाय के लोगों की भारी भीड थी । वे लोग अमावस्या का कोई कार्यक्रम करके गुरुद्वारा से लौटे थे । इनमें से कुछ लोग ठेलमठेल करते हुए हमारे डिब्बे मे भी चढे । यह डिब्बा पहले से ही खचाखच भरा था । एक सीट पर आठ लोग तक बैठे थे और जो खडे थे वो तो थे ही । एक सीट पर किसी तरह बैठे हुए ग्रमीण क्षेत्र की दो बूढी आरतें जो काफी देर से प्यासी थीं और पानी लेने की सोंच बनाए बैठी थीं , जब गाडी रुकी तो वे अपनी सीट से उठकर खडी हुईं और ऊपर रैक पर झोले मे रखी हुई पानीकी बोतल निकालने लगीं और उसी सीट का एक बूढा आदमी भी पेशाब करने के लिए जैसे ही सीट से उठकर जाने को हुआ, डिब्बे मे घुसी हुई भीड मे से दाढी बाल पके हुए एक दुबले पतले बूढे और उसके चार साथियों ने जबरजस्ती सीट पर कब्जा कर लिया । सीट से उठकर तीन लोग खडे हुए थे और ५ लोग बैठ गए तो बैठे हुए दो लोग भी नीचे लुढक गए । मैं सामने की सीट पर बैठा था मुझसे यह जबरजस्ती देखी नगई । मैं और कुछ लोग बोल पडे । कहासुनी होने लगी । मैने उन लोगों से कहा कि आपलोग तो गुरुवाणी सुनकर आ रहे हैं , आप को ऐसा काम तो शोभा नही देता है । इतना सुनते ही वह बूढा तो तैश में आ गया और तू मुझे गुरुवाणी का अर्थ समझाएगा कहकर गालियाँ बकने लगा । भीड उनलागों की थी इस लिए मै चुप हो गया लेकिन उन्ही में से एक युवक आगे बढा और मेरी गर्दन पकडकर सीट से उठा दिया और एक सरदारनी को मेरी सीट पर बैठा दिया । मुझ सहित के चार बृद्ध बृद्धाओं ने खडे खडे यात्रा की । अब तो सोंचता हूँ कि मुझे उनलागों को धन्यवाद देना चाहिए कि उन्होने पीटपाट नहीं की । यह मेरे जीवन का दुखद स्मरणीय प्रसंग है । उस दिन से मुझे यह लगा कि जिस किसी भी पंथ,धर्म,सम्प्रदाय या संगठन के ऐसे पूजा पाठ ,उत्सव या पर्व के समय भक्तों, श्रोताओं और अनुयायियों को सावधान कराने का प्रचलन नही है और अधिकांशतया ये लोग पूजन के उद्देश्य के प्रति गम्भीर भी नहीं होते हैं । यह लोग चिन्हपूजा भर करते हैं और आराधना को उत्सव के रुप में मानते हैं । इस लिए वे जोश और उमंग मे होते हैं और यदि वो लोग भीड के रुप में हैं तो वे प्रायः उग्र और अविवेकी हो जाते हैं । ऐसे लोग तो समाज के लिए और भी ज्यादा खतरनाक हो जाते हैं ।

गुंजन : इसका मतलब मेरे उमर के लोगों के लिए तो यह यात्रा फलदायी हुई और आपलोगों के लिए निरर्थक ?

किशोर : शिक्षण और सिखावट यह आजीवन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है । और चूँकि साधना तथा सेवा जैसी मनोभावनाओं को भी नित नवीन उर्जा की

जरुरत पडती रहती है, इस कारण युवा अवस्था से ही तीर्थाटनद्वारा समाज निष्ठता और सेवा के अभ्यास में लगे हुए व्यक्तिके लिए प्रौढावस्था और वृद्धावस्थाका तीर्थाटन श्रेयष्कर ही होता है लेकिन फलदायी होने की सम्भावना कम ही होती है ।

कंचन : अच्छा तो यदि मूर्तियों की आवश्यकता नही है और वैसे ही भगवान की उपलब्धता हो सकती है तो ये मन्दिर क्यों ? और मन्दिर न हों तो तीर्थ कैसे बनेंगे ?

किशोर : मुश्लिम, सिख, जैन और बौद्धिष्ठ भी तो मूर्तिपूजक नही होते हैं । लेकिन इन सभी के पवित्र स्थान गुरुद्वारा और आश्रम होते हैं । इन धर्मो के तीर्थ यात्री भी तो अपने अपने तीर्थ को जाते हैं और अपने अपने तरीके से पूजा आराधना करते हैं, सामाजिकता का अभ्यास करते हैं । यह सब निराकार ब्रह्म की एकता में विश्वास करते हैं । हिन्दुओं का भी तो वही है न ? आदमी और भगवान के बीच में यदि मूर्ति न ही रखी जाय तो ज्यादा अच्छा होता ।

कमलः लेकिन अन्य धर्मावलम्बी भी तो किसी न किसी तरह से चिन्ह पूजा तो करते ही हैं ध्यान कहीं तो केन्द्रित करना ही पडता है ?

किशोरः हाँ कुछ हद तक तुम्हारी बात को ठीक कहा जा सकता है । यहूदी अपने मन्दिर में एक बाकस में धार्मिक पुस्तकें रखकर इन्हे पूजते हैं, रोमन कैथोलिक और यूनानी ईशाइयों में ईशा और उनके माता पिता को पूजने की प्रथा को देखते हुए कुछ माने में मूर्ति पूजा है, प्रोटेस्टेण्ट में मूर्ति पूजा तो नही है लेकिन वे लोग ईश्वर को व्यक्ति विशेष मानकर उपासना करते हैं, पारसी और ईरानी अग्नि पूजा करते हैं, मुसलमान पीर फकीर और उनकी मजार को पूजता है और काबा की ओर मुह करके नमाज पढता है । इससे ऐसा लगता है कि धर्म साधना की प्रथम अवस्था में आदमी को कुछ बाहरी अवलम्बन की आवश्यकता पडती है । लेकिन बाहरी पूजा छोटी बडी कैसी भी हो उसको करने मे कोई पाप नही है । जो जैसी उपासना कर सकता है उसके लिए वही ठीक है । इस लिए जो मूर्तिपूजा करता है करे जो नही करता है न करे । उपासना प्रणाली को लेकर झगडना अनुचित है । प्रणाली कोई भी अवलम्बन की जाय लेकिन उपासना आवश्यक है ।

कमलः अच्छा तो सर्वोत्तम उपासना कैसे और किसकी की जाय ?

किशोरः स्वामीविवेकानन्दने कहा है कि देव उपासना की जितनी भी पद्धतियाँ हैं उनमें मनुष्य रुप की उपासना सर्वोत्तम है । वास्तव में यदि किसी की पूजा करनी है तो दरिद्र नारायण की पूजा करना अच्छा है । अवतारवाद का अर्थ है मनुष्य पूजा, मनुष्य के भीतर ईश्वर का वास्तविक साक्षात्कार करना । हिन्दू प्रकृति के द्वारा प्रकृति तक, ईश्वर तक नही पहुँचते – मनुष्य के द्वारा मनुष्य के, ईश्वर के निकट जाते हैं । फिर भी विभिन्न धर्म, सम्प्रदाय और उपासना पद्धतियाँ किसी को भी गलत नहीं कहा जा सकता है । यह धर्म और सम्प्रदाय कोई दुष्ट या पाखन्डियों

द्वारा निर्मित नहीं हैं और न तो उन लोगों नें किसी धन दौलत के लोभ में इन धर्म सम्प्रदायों की उत्पत्ति की है । यह धर्म और सम्प्रदाय विभिन्न श्रेणी के मनुष्यों की धार्मिक भावनाओं को तृप्त करने के लिए विकसित हुए हैं । इनकी आलोचना या विरोध मत करो । तलवार और बंदुक के बल पर दुनिया पर विजय पाई जा सकती है,लेकिन जबतक मूर्तिपूजा की आवश्यकता रहेगी तबतक यह होती रहेगी । ये अनुष्ठान पद्धतियाँ और धर्म की सीढियाँ रहेंगी ।

रिती:हिन्दुओं में जो विभिन्न सम्प्रदाय हैं, क्या उन सभी में आपस में तात्विक एकता है ?

किशोर: हां विवेकानन्द ने ही कहा है कि एक ही संप्रदाय के लोग सब काम नहीं कर सकते हैं । इस लिए संप्रदायों के न रहने से संसार का काम नहीं चल सकता है, इस लिए सम्प्रदायों का होना तो नितान्त स्वाभाविक है लेकिन सांप्रदायिकता नहीं होनी चाहिए । सभी संप्रदायों में चाहे कोई वेदान्ती,शैव,वैष्णव,बौद्ध,जैन,सिख,कृष्णप्रणामी,शाक्त,परम्परावादी, सुधारवादी, ओम् शान्ति, कोई भी हो, उनमें एकता बनाए रखने के कुछ सामान्य तत्व हैं, जिनपर सभी सहमत हैं ।

क, धर्म विषयक जितने भी भेद हैं उनकी अन्तिम मीमांसा वेद ही करता है । वेद हम सबकी प्रथम मिलन भूमि है ।

ख, हम सब लोग ईश्वर में विश्वास करते हैं । चाहे कोई साकार माने या निराकार जैसा भी माने लेकिन जगत का उत्पत्तिकर्ता, प्रलयकर्ता और लयकर्ता एक अन्तिम सत्ता है इसे सबलोग मानते हैं ।

ग, सभी सम्प्रदाय तीन चीजों का अस्तित्व स्वीकार करते हैं ईश्वर, आत्मा और जगत ।

घ, यह प्रकृति अनादि और अनन्त है , जब काल का भी आरम्भ नही हुआ था यह तभी से चली आ रही है और अनन्त काल तक चलेगी । कल्पान्त में यह स्थूल जगत अति सूक्ष्म अवस्था में आ जाता है ,कुछ काल तक उसी अवस्था में रहने के बाद पुनः उसका प्रक्षेपण हो जाता है । यह तरंगाकार गति अनंत काल से गतिमान है।

ङ०, आत्मा नामक अनिर्वचनीय वस्तु है, जिसका न आदि है न अंत । इस शव्द का अँग्रेजी में कोई भी सही पर्याय नहीं है । हम पुनर्जन्मवाद और नित्यवाद को मानते हैं । आत्मा को न कोई मार सकता है , न तो काट सकता है । आत्मा अनन्त है । उसकी श्रृष्टि कभी नहीं हुई, इस लिए उसका नाश भी कभी नहीं होता है । आत्मा स्वभावतः पूर्ण, अनन्त, शक्तिसम्पन्न,और आनन्दमय है । हम आत्मा को पूर्ण मानते हैं और पश्चिम के लोग इसे पूर्ण नहीं मानते हैं । हमारे और उनके बीच में यह

बहुत बडा अंतर है । आत्मा की पूर्णता के इस अपूर्व सिद्धान्त को हम सभी सम्प्रदायवाले मानते हैं ।

च, हम सभी सम्प्रदाय के लोग जब उपासना करते हैं तो आँख बन्द करते हैं और ईश्वर को अन्दर ढूढते हैं । पश्चिम के लोग ईश्वर को बाहर देखते हैं । पश्चिमी धर्म ग्रन्थ प्रेरित (Inspired) हैं और हमारे धर्मग्रन्थ अंतःप्रेरित (Expired) हैं ।

छ, धर्म का तात्पर्य है प्रत्यक्षानुभूति । हम ईश्वर के दर्शन अर्थात आत्म साक्षात्कार को प्रमुख मानते हैं । प्राचीनकाल में हमारे सहस्त्रों व्यक्तियों ने आत्मा के प्रत्यक्ष दर्शन किए हैं ।

ज, पश्चिमी भाषा में मनुष्य आत्मा छोडता है (A man gives up the ghost) पर हमारी भाषा में मनुष्य शरीर छोडता है । यदि कोई साम्प्रदायिक झगडा करने को तैयार हो तो उससे पूछो– क्या तुमने ईश्वर के दर्शन किए हैं ? क्या तुम्हें आत्म दर्शन हुए हैं, ? यदि नहीं तो तुमको ईश्वर के नाम का प्रचार करने का क्या अधिकार है ? सबको अपनी अपनी राह चलने दो , प्रत्यक्ष अनुभूति की ओर अग्रसर होने दो ।

आदित्य : आप ने जो ब्रह्म की एकता की बात कही यह क्या है ? किशोर एक क्षण चुप रहे । कुछ विचार करने लगे, फिर बोले -

अध्याय -२

ब्रह्मवाद-एकेश्वरवाद

(monistic concept)

किशोर : हिन्दुओं की सारभूत मान्यता में ईश्वरकी एकमात्र सत्ता ही सर्वव्यापक है । ईश्वरका कोई निश्चित स्वरुप नही है । वह निराकार और सर्व व्यापक है । आदमी ईश्वरको अपने जैसे रुप रंग के व्यक्ति के रुप में देखता है लेकिन हम जरा यह सोंचें कि यदि हाथी, बाघ, भालू, चिडिया और कीट पतंगे भी सोंचने की शक्ति रखते होते तो वे भी अपने जैसा रुप रंग का भगवान का अस्तित्व मान रहे होते । तात्पर्य यह है कि जो जैसा है उसका भगवान उसी के रुप रंग जैसा होता है । लेखक,चित्रकार,मूर्तिकार और भक्त जन अपने को जैसा प्रिय लगता है वैसा भगवान बनाते हैं और जिसपर श्रद्धा टिक जाती है उसे ही भगवान मान लेते हैं । अर्थात ईश्वर का रुप रंग तो प्राणी की कल्पना मे नीहित हेाता है । अपने जैसा ईश्वर मानने की सोंच ने ही तो तमाम सम्प्रदाय खडे किए हैं और मानव-मानव के बीच विभेद पैदा हुआ है । मतलब साफ है कि जो जैसा है उसका ईश्वर भी उसी के जैसा है अर्थात ईश्वरका रुप रंग प्राणीके कल्पना मे नीहित है । तो ईश्वर को भी अपने श्रद्धा और विश्वास के अनुसार पुकारना अनुचित तो नही है न ? गणेश, हनुमान, दुर्गा, सरस्वती, महादेव, अल्लाह , गाड , वाहे गुरु आदि जिस नाम से पुकारने पर भी बोलने बाला तो वह ईश्वर एक ही है न ? इसलिए हम लोग अपनी रुचि और सुविधा के अनुसार ईश्वरका जो रुप गढ्ते हैं उससे कोई लाभ नही है । ईश्वर निराकार है । वेद पुराण सब एक स्वर से यही कहते हैं ।

आदित्य : देवी भागवत में महादेवीको, शिवपुराण में शिवजी को, रामायण में राम, श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण, ऐसे ही अन्य पुराणें में अन्य देवी देवताओ.को श्रेष्ठ माना गया है । वास्तव में ऐसा क्यों ?

रामजी : सनातन हिन्दू धर्म की यही तो विशेषता है । सम्पूर्ण हिन्दू समुदाय ईश्वर के किसी एक रुप पर निष्ठावान न हो पाने के कारण अपने अपने भाव और रुचि के अनुसार अलगाव और भिन्नता की स्थिति बन जाने पर रचनाकार ने आदमी के हृदय में उठने वाले भाव के अनुसार रुप की रचना कर दी है । ये पुराण अलग अलग मंच है जिसमें से किसी एक को छाँट सकते हो । यह अलगाव का क्रम आज भी जारी है । ॐकार परिवार में सिख, बौद्ध, जैन, कृष्णप्रणामी, कबीरपंथी, रामानंदी, वैष्णव, ॐ शान्ति, जय गुरुदेव, जैसे पचासों पंथ हैं और हमलोग अपनी रुचि अनुसार के स्थान में जाकर अपनी रुचि और प्रकृति के अनुसार देवी देवता गढ कर

उनकी पूजा आराधना के द्वारा शक्ति और संतुष्टि प्राप्त कर सकते हैं । इन पंथ और पंथियों के बीच में आपस में छोटा बडा होने का कोई विवाद नहीं है क्योंकि नाम और स्वरुप अलग अलग कर देने के बाद भी सब एक ही तो है ।

गुंजन : लेकिन ईश्वर प्राप्ति ?

रामजी : यह तो साधक के ऊपर निर्भर है । किसी ने प्रतीक और पूजा को ही अन्तिम लक्ष्य बनाया है तो उसे शान्ति और संतुष्टि तो प्राप्त हो सकती है लेकिन ईश्वर प्राप्ति में संदेह ही रहता है । लेकिन यदि प्रतीक (मूर्तिपूजा) को सीढी और ईश्वरको लक्ष्य बनाया है तो उसे निःसंदेह ईश्वरकी प्राप्ति हो सकती है, कभी कभी तो प्रह्लाद जैसे अटूट श्रद्धा भक्ति करने वालों के लिए खम्भे में भगवान प्रकट होजाते हैं और माता काली की मूर्ति स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सामने हाथ फैलाकर भोजन भी ग्रहण कर लेती है ।

गुं**जन :** इस तरह अपनी अपनी मान्यता के मंच पर बैठे हुए लोगों के बीच मतभिन्नता के कारण विवाद और संघर्ष की भी स्थिति तो है न ?

रामजी : सनातन हिन्दू धर्मावलम्बियों मे आपस में कभी ऐसा बडा विवाद हुआ हो ऐसी बात इतिहास में कहीं मिलती तो नही है । विविध मान्यता में समन्वय और एकता इस धर्मकी विशेषता है । सभी सम्प्रदाय एक दूसरे के विश्वास और आस्था के प्रति श्रद्धा करते हैं । अपनी आस्था और विश्वास को अन्य दूसरे सम्प्रदाय की तुलना में श्रेष्ठ कहने का प्रचलन ही नही है । क्योंकि इन सभी सम्प्रदायों का श्रोत सनातन धर्मी मूल्य ही तो है, जिसमें ब्रह्म की एकताको स्वीकार किया जाता है । इसमें महात्मा गाँधी का एक सद्वाक्य "जहाँ उदारता, सहिष्णुता और सत्य है वहाँ कभी कभी मतभेद भी लाभदायक शिद्ध होते हैं ।" इस जगह भी साँदर्भिक दिखता है ।

आदित्य : तो इन विभिन्न मान्यताओं को स्थापित करने से अच्छा तो एक ही मान्यता की स्थापना की जाय । विभेदको स्थान ही क्यों दिया जाय ?

रामजी : यह विभेद तो नहीं है न । यह तो ऐसी बात हुई कि भगवानको, ईश्वर, अल्लाह,खुदा,मालिक, गाड, राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, सरस्वती, हनुमान आदि नामों से पुकारा जाय तो भी शक्ति तो वही एक ही है । किसीको बच्चे पिताजी, डैडी, बाबूजी जो भी कहें, पर व्यक्ति तो एक ही होता है । यह तो आत्म संतुष्टिका संबोधन है । एक नदी के घाट पर कोई माझी रामनामी नाव, कोई अल्लाह नामी, कोई गाड, कोई यीशु, कोई बुद्ध और कोई वाहे गुरु नामकी नाव पर यात्रियोंको नदी पार करवा रहा है । उन सभीका लक्ष्य नदी पार करवाना है । नाव अलग अलग है तो क्या हुआ ? गन्तव्य तो सभीका एक ही है और जब लक्ष्य एक ही है तब जिस प्रक्रिया से भी उस पार जाया जाय परिणाम में फर्क तो नहीं पडता है न ।

कंचन : ईशाई और इस्लाम भी तो एक ईश्वरवादी हैं न ? हिन्दू धर्म से इसमें कोई फरक है क्या ?

रामजी : फरक है । संस्कृत के धर्म शव्द की उत्पत्ति और परिभाषा के अनुसार मानव धर्म अर्थात सनातन धर्म एक मात्र धर्म है । यह मानव धर्म है । इसको जीवन जीने की कला भी कह सकते हैं । इसके मूल्य और मान्यताओं से हिन्दू लोग अधिक निकट हैं । इस लिए इसको हिन्दू धर्म भी कह दिया जाता है । लेकिन संसारके सभी प्राणी अपनी अपनी स्थिति ,आवश्यकता ,रीति,परम्परा,भूगोल,जलवायु और वातावरण के अनुसार अपने जीवन निर्वाह के क्रम में जो शाश्वत मूल्य मर्यादा तथा रीति और प्रणालियाँ अपनाते हैं वे सब मानव धर्म अंतरगत के सिद्धान्त ही हैं । अर्थात मानव धर्म(आज की प्रचलित भाषा में हिन्दू धर्म) को सभी लोग कमोवेश मानते जरुर हैं । यह सभी प्राणियों का साझा धर्म है । और धर्म सभी का एक है मानव धर्म ।

लेकिन जब ईश्वरीय आस्था और धार्मिक अभ्यास के पद्धति की बात करते हैं तब तमाम मान्यताएँ और तरीके विकसित हुए दिखते हैं , जिसको वास्तव में पंथ कहा जाता है । लेकिन जीवन के कुछ शाश्वत सिद्धान्त और शैलियों का भी समावेश होने के कारण इनको भी धर्म कह दिया जाता है । शैव , शाक्त , वैष्णव, रामानन्दी, ओम शान्ति, कृष्णप्रणामी, कापालिक , अघोर , बौद्ध ,जैन , वहावी, कन्फ्यूसियस , ताओ , इस्लाम, ईशाई,सिख आदि । ऐसे पंथ, सम्प्रदाय और मत बहुत हैं । इनमे भी अलग अलग शाखा प्रशाखा , मान्यता और प्रचलन हैं । अन्य सभी धर्म और देशों में आत्मा की शक्ति को बिल्कुल स्वीकार नही किया जाता है । आत्मा को प्रायः शक्तिहीन, दुर्बल और जड वस्तु की तरह समझते हैं लेकिन हिन्दू उपनिषद कहते हैं कि आत्मा शाश्वत और पूर्ण है । हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अन्य जितने भी धर्म संसार में हैं वह सब किसी धर्म–प्रवर्तक । या धर्म प्रवर्तकों के जीवन से अविछिन्न रुप से सम्बन्धित हैं । यदि कभी उन महापुरुषों के अस्तित्व विषयक प्रमाण कमजोर हुए या इनकी जीवनी में कोई कमी कमजोरी दिखाई पड जाय तो उनका धर्म बिखरने का खतरा बढ जाता है । लेकिन हिन्दू इस विपत्ति से मुक्त हैं । यह धर्म व्यक्ति विशेष पर प्रतिष्ठित न होकर सनातन सिद्धान्तों पर प्रतिष्ठित है इसमें किसी अवतार के कथन को ही अपना धर्म नही मानते हैं । कृष्ण के वचनों से वेदों की प्रमाणिकता शिद्ध नहीं होती है । वे वेदों के अनुगामी हैं इसलिए उनके शव्द प्रमाणस्वरुप हैं । कृष्ण वेदों के प्रमाण नहीं हैं, वेद कृष्ण के प्रमाण हैं । कृष्ण इस लिए महान हैं कि वे वेदों के सर्वश्रेष्ठ प्रचारक हैं ।

रितीः तो आखिर सार्वभौम सिद्धान्त तो कहीं से आए ही होंगे, उनका मौलिक धरातल तो कहीं होगा ही न ?

रामजी: हाँ ,वेद और उपनिषद संसार का एक मात्र सार्वभौम धर्म संग्रह है, क्योंकि यह व्यक्ति विशेष के स्थान पर सिद्धान्त की शिक्षा देता है । व्यक्ति विशेष के द्वारा चलाए हुए धर्म को पूरे संसार की समग्र मानव जाति ग्रहण नहीं कर सकती है । समस्त नैतिकता, आचरण,अध्यात्मिकता तथा धर्म का सत्य केवल एक व्यक्ति के विचारों पर कैसे आधारित हो सकता है ? वेदान्त धर्म में इस तरह से किसी व्यक्ति विशेष के वाक्यों को प्रमाण मानने का प्रावधान नही है । मनुष्य की सनातन प्रकृति ही इसका प्रमाण है । इसका आचार शास्त्र मानव के सनातन आध्यात्मिक एकता पर प्रतिष्ठित है जो हमारे प्रयत्नों द्वारा प्राप्त नही हो सकता है, वह तो पहले से ही उपलब्ध है ।

नितिन: आचार शास्त्र या धर्म ही कहो,इसके व्याखाकार ही तो मूल सिद्धन्तों का प्रतिपादन करते हैं, इनमें मत भिन्नता हो जाय तो ?

रामजी: प्राचीन युग से हिन्दू लोग किसी व्यक्ति के प्रति निष्ठावान नही हैं , वे धर्म के तत्वों पर निष्ठावान रहे हैं । यदि तत्व सुरक्षित रहे तो महान व्यक्ति हजारों पैदा होते रहेंगे, लेकिन यदि मूल तत्व नष्ट हो गए या मानव समुदाय किसी महापुरुष के ऊपर निर्भर रहा तो चौतरफा संकट ही है । केवल हिन्दू ही एक मात्र ऐसा धर्म है जो तत्वों पर आधारित है , किसी व्यक्ति के लिए नहीं ।

हमारे ऋषियों ने बहुत पहले ही यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि मनुष्य जाति को किसी व्यक्तित्व या प्रतीक के रुप में ईश्वर जरुरी है इस लिए उन्होंने ऐसी मान्यता को प्रश्रय दिया । बुद्ध ने व्यक्ति विशेष ईश्वर के विरुद्ध प्रचार किया था लेकिन उनके निर्वाण के करीब ५० वर्ष बाद ही उनके शिष्यों ने उन्हे ही ईश्वर मान लिया ।

बुद्ध ने सर्वसाधारण को प्रबुद्ध बनाने के लिए संस्कृत को छोडकर लोक भाषा पाली भाषा में उपदेश दिया और भगवान राम की तरह दुखी,गरीब, भिखारी और चान्डाल सबको गले से लगाया । उन्होने प्राणी हिंसा की निंदा की और वैदिक यज्ञों का घोर विरोध किया । लेकिन उनके धर्म में जो असभ्य,अज्ञानी और तातार बलूची आदि भयानक जातियों के लोग दीक्षित हो गए उन्होने बुद्ध के उच्च आदर्शों का पालन तो नही ही किया साथ साथ में अपनी मान्यताओं को भी न छोड सके और उनकी वे मूल्य और मान्यताएँ बौद्ध धर्म में प्रवेश कर गईं । उनके वीभत्स और भयानक संस्कार तथा उपासना पद्धतियाँ, भूत प्रेत,सब इसमें आ गए । परिणामस्वरुप कालान्तर में ब्राह्मण धर्म और मूर्तिपूजा प्रचलन में आ गए । इस धर्म में संस्कृत को निकाल देने के करण उनके शिष्य संस्कृत भाषा के ग्रन्थों में, खास करके वेद और उपनिषद में अभिव्यक्त नैसर्गिक मानवीय मूल्यों से अपरिचित रह गए और इन शिष्यों ने जब कोई ठोस शास्त्रीय धरातल नही पाया तो बुद्ध के उपदेशों की मनोगत व्याख्या की और उच्च आदर्श और नैतिकता के अभ्यास छूट गए , यह धर्म चार खण्डो में विभाजित ही नही हुआ, इसकी दुर्गति भी हुई है ।

इस प्रकार हिन्दू दर्शन में **जीवन जीनेका मूल सिद्धान्त, मूल्य, मान्यता , कला, व्यवहार , प्रणाली आदि के समूह का नाम धर्म है और आत्म परिष्कार की साधना का नाम अध्यात्म है । इसके साथ ही ईश्वर के प्रति आस्था विश्वास और मान्यता तथा इससे आत्म प्रगति के अभ्यास का तरीका या शैली का नाम पंथ है ।**

रितीः हिन्दू धर्म के अन्दर ही विभिन्नताएँ इसमें कुछ जटिलता जरुर पैदा करती हैं ।

रामजीः इसको फिर से समझो । इश्लाम और इशाई धर्म एक ईश्वर वादी माने जाते हैं । हिन्दू भी वास्तव में एक ईश्वरवादी ही है । लेकिन हिन्दू धर्म में एक ईश्वरवाद की ऐसी विशेषता है जो और धर्म में नही है । हिन्दु धर्म में ईश्वरको एक मात्र महाशक्ति मानने के वाद भी अनेक देवी देवताओं को इनकार ही कर देनेकी आवश्यकता नहीं होती है । क्योंकि इसमें ईश्वर एक है ऐसी दृढ मान्यता तो है लेकिन ईश्वर अपनेको अनेक देवी देवता के रुप में अभिव्यक्त कर सकता है और ईश्वर के किसी भी रुपकी पूजा आराधना की जा सकती है । जैसे कोई एक व्यक्ति किसीका पति, पिता, चाचा, पितामह, शिक्षक, पुजारी, व्यवसायी, नेता, लेखक, विचारक आदि कई रुपमें प्रकट हो सकता है, वैसे ही विभिन्न समय में विभिन्न आवश्यकता अनुसार ईश्वर अनेक रुप मे प्रकट हुआ करते हैं ।

एक और उदाहरण देखें । कोई एक व्यक्ति शाम सुबह नाव चलाता है, इसलिए वह नाविक (केवट) है, वह नाटक में अभिनय भी करता है इसलिए वह रंगकर्मी कलाकार है, वह चित्रकार भी है और राज्य का सिपाही पुलिस भी है । यह व्यक्ति अपने सभी कार्यों में निपुण है । वह जिस समय जो काम करता है उस समय वैसी पोशाक पहनता है, वैसे ही वस्तु उपकरण धारण करता है और उन सभी कार्य व्यवसाय की अवस्थाओं का अलग अलग चित्र भी खिंचवा रखा है । सामान्यतया कोई व्यक्ति इन चारों चित्रों को देखेगा तो अलग अलग चार व्यक्ति के चित्र ही बताएगा । लेकिन केवट की पोशाक पहनकर और नाव चलानेवाला चप्पू लेकर वह न तो पुलिस की ड्यूटी करने जाएगा और न तो स्टेज पर नाटक में भाग ही लेगा । ऐसे ही नाटक की पोशाक पहनकर न तो वह नाव चलाने जाएगा और न तो पुलिस ड्यूटी पर जाएगा । तात्पर्य यह है कि उसका जहाँ जैसा दायित्व है उसी अनुसारका रुप धारण करके और वैसा ही काम करने के लिए वह बाध्य है और वह अपने प्रत्येक रुप में पूजित भी होता है । लेकिन मूल रुप में वह व्यक्ति तो एक ही है न ? ठीक इसी तरह ईश्वर भी विभिन्न प्रकार के कार्य सम्पादन के क्रम में काम अनुसार अलग अलग रुप धारण करते हैं । जिन रुपों को हम देवता कहते हैं ।

ऋग्वेदका १६४ सूक्त के मन्त्र संख्या ४६ में "एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" अर्थात भिन्न भिन्न देवता एक ही ईश्वर के विभिन्न रुप अर्थात देवी देवता की आकृति और स्वरुप की रचना करता है । उसी स्वरुप की आराधना होती है लेकिन जो कुछ भी हो, आराधना तो उसी परब्रह्म परमेश्वर की ही तो होती है ।

उमा : आपलोगों के तर्क वितर्क और प्रश्नोत्तर से हम तो चक्कर में पड गए । एक ही ईश्वरको मानो तो "एकेश्वरवाद" और अधिक देवताओंको मानो तो भी "एक ईश्वरवाद" कहते हैं । यह बात समझ में नहीं आई ।

किशोर : हाँ ठीक ही है । मैने कहा कि एक ही ब्रह्म अर्थात ईश्वर हैं और उनकी उपासना करने से ही सबकुछ प्राप्त हो सकता है और अन्य देवी देवता आदमी के मन की रचना भर हैं । अन्तिम सत्य यही है । अन्य विचारकों ने भी एक ही ईश्वर विविध देवताओं के रुप में प्रकट होने की बात करते हैं ।

समन्वयात्मक रुप से यह कहना चाहिए कि एक ही ईश्वर इस विश्व ब्रह्माण्ड में विविध रुप में प्रकट हो रहे हैं । इस प्रकार देवता भी ईश्वर के ही प्रतिरुप या छाया ही तो हैं । हिन्दुओं में यही धारणा का प्रचलन है । इस मान्यता को गलत तो कहा ही नही जा सकता है लेकिन मेरे विश्लेषण में यदि बहुदेववाद के स्थान पर एकदेववाद ही माना जाय तो ज्यादा अच्छा रहेगा । जब एक ही शक्ति से सब काम बन जाता है, औंर एक ही मन्त्र से सब कुछ हो सकता है तो अलग अलग देवताओं के नाम रुप और स्तुति न बनाया गया होता तो शायद ज्यादा अच्छा होता । विभिन्न देवताका अलग अलग मन्दिर न बनाना पडता, पूजा विधि भी एक ही होती । आत्मपरीक्षालन (आत्मशोधन) इन्द्रिय निग्रह और आत्म चिन्तन ही उचित और परम लक्ष्य रहता ।

उमा : क्यों ?

किशोर : क्योंकि बहुदेववाद के कारण से यह हिन्दू समाज कई सम्प्रदाय और पंथ में विभाजित हो गया है इस लिए हिन्दू कमजोर हुआ है । पुजारी, पंडित और पंडाओं का धर्म पर एकाधिकार स्थापित हुआ है और इसी वर्ग ने अपने स्वार्थसिद्धि के लिए जनताको राजनीतिक और सामाजिक चेतना से दूर कर रखा है । धार्मिक कही गई पुस्तक और प्रवचन तथा आडम्बर द्वारा मनुष्यको भयभीत और त्रसित कर रखा है । वर्ण और जाति व्यवस्था के कारण से योग्यता और बुद्धिमता को स्थान नही मिला है । **बुद्धिमत्ता, प्रतिष्ठा और सम्मान जाति के आधार से प्राप्त होने के कारण हिन्दू-हिन्दू के बीच में ही छुवाछूत और व्यापक विभेद है** । इसलिए एकेश्वरवाद अथवा एक ब्रह्म, एक मन्त्र, एक उपासना पद्धति, और बुद्धि, योग्यता क्षमता और श्रमको "प्रतिष्ठा" का मापदण्ड बनाना आवश्यक है । वेद पुराण और हिन्दू दर्शन का यही मर्म है ।

अब दो विचारणीय बातें सुनो । पहली बात तो यह है कि मुहम्मद साहेब से पहले इस्लाम नहीं था ,बुद्ध से पहले बौद्ध नही था । तीर्थंकर से पहले जैन, कथित शिवबाबा से पहले ओम शान्ति ,गुरु गोविन्द सिंह से पहले सिख ,ईशु मसीह से पहले क्रिश्चियन नहीं था । इसी तरह रजनीश से पहले ओशो धारा नही थी , एसे ही जय गुरुदेव ,रामपाल का कबीर,कन्फूसियस और ताओ आदि दुनियामे उपजते जाते हुए धार्मिक मान्यताओं से पहले क्या था ? मात्र मानव धर्म तो था न ? लेकिन विभिन्न साधकों ने मानव जीवनके अलग अलग सिद्धान्त बनाए और धर्मका बँटवारा होता गया । मानव समाज का विभाजन हुआ ,मानव के साथका मानव धर्म नष्ट हो गया और आदमी हिन्दू,मुश्लिम,सिख,ईशाई, जैन आदि हो गया । नये नये सम्प्रदाय और भगवानों के जन्मने का यह क्रम आज भी जारी है ।

दूसरी बात, तमाम साधकों ने मूर्तिपूजा का विरोध तो किया है । लेकिन किसी ने सूर्य ,किसी ने चन्द्रमा ,किसीने अग्नि किसी ने मकबरा, फोटो, धर्मग्रन्थ आदि वस्तु पूजा की परम्परा स्थापित की है । और हास्यास्पद तो तब हुआ जब यीशु , बुद्ध , जैन तीर्थंकर महावीर ,गोविन्द सिंह , सिरडीके साई बाबा ,सत्य साई बाबा , जय गुरुदेव और रामपाल के अनुयायियों ने राम ,कृष्ण , शिव , गौरी , काली आदि देवी देवताओं की मूर्ति नपूजने को तो कहा लेकिन इन मूतियों के स्थान पर यीशु , बुद्ध , जैन तीर्थंकर ,गोविन्द सिंह , सिरडी के साईं ,सत्य साई बाबा , जय गुरुदेव और रामपाल आदि विभिन्न गुरुओं की मूर्तियाँ रख दी, इनको पूजने लगे । अब सिद्धान्त कहाँ गया ? फरक क्या पडा ? बात झूठी हुई कि नही ? मानव को नया सिद्धान्त देने के बहाने दिन मे ही रात कर दी और अपना स्वार्थ सिद्ध किया कि नही ? ऐसे सम्प्रदाय खडा करने वालों में से कितनों ने तो खुद अपने आप को ही भगवान कह डाला और कितनों की मुत्यु के बाद में उनके अनुयायियों ने सम्प्रदाय खडा करनेवाले धर्मगुरुओं को भगवान बना दिया है । हिन्दू धर्म को इन भगवानों से कितनी हानि हुई है इसका लेखाजोखा तो हो ही नही सकता है ।

बहुत कम ऐसे गुरु होंगे जिन्होने समाज को विखण्डित नही किया है ,अपने को भगवान नही कहा है , मानव जाति के हित और कल्याणका मार्ग प्रशस्त किया है और विभिन्न धर्म और पंथ के बीच में समन्वय किया है ,सत् धर्म बताया है , मानव धर्म को अपनाया है और दूसरोंको भी वैसा ही करने को कहा है । अन्यथा जैसे जैसे धर्म सम्प्रदायों का जन्म होता जाता है, उससे यद्धपि मनुष्यको अपनी रुचि अनुसार विचार अपनाने और चुनाव करने का अवसर तो मिला है, प्रजातान्त्रिक वातावरण बना है , नैतिकता और समाज में शान्ति और सुख की स्थापना को बडा बल मिला है ,मानवता की रक्षा होती रही है, फिर भी मानव धर्म उतना ही विखण्डित और,कमजोर होता गया है, होता जाता है और आदमी आदमी के बीच मे विभेद बढता जाता है ,संसार मे अशान्ति और युद्ध होते हैं । आदमी आदमी के बीच द्धन्द, संघर्ष और युद्ध का प्रमुख कारण मानव निर्मित धर्म और सम्प्रदाय है । यह काम हिन्दू धर्म मे प्रायः धर्म गुरुओं द्धारा होता आया है । समाज के हित में काम करते हुए भी इन लोगों ने अपनी मान, प्रतिष्ठा, यश और कीर्ति को अजर अमर बनाने के लिए कोई सम्प्रदाय खडा कर देते हैं , अपना यशोगान करनेवाली भजन मण्डलीको बढावा देते हैं और कालान्तर में खुद भगवान बन जाते हैं

और **गुरुर ब्रह्मा गुरुर विष्णु गुरुरदेव महेश्वरः । गुरु साक्षात पर ब्रह्मा तस्मै श्री गुरुवै नमः ॥** इस श्लोक के सहारे अपनेको पूजनीय, सर्वोपरी और सर्वशक्तिमान शिद्ध कर देते हैं और निचले तबके के व्यक्ति, ढोंगी, पाखण्डियों ने भी इस श्लोक को अपना रक्षा कवच बना रखा है और इसको उपयोग करके साधारण जनता को खूब भ्रमित करते हैं और ठगते रहते हैं ,आर्थिक ,मानसिक, शारीरिक और कतिपय तो यौन शोषण भी करते हैं । केवल पेट भरने के लिए योगी भेष बनाने वालों से लेकर समाज में रहने वाले असामाजिक लोग किसी गुरु का अनुयायी बनकर हाथ, गले मे कोई चिन्ह, धागा,माला, तिलक या वस्त्र आदि पहनकर धार्मिकता का आवरण ओढकर अपनेको उत्तम कोटि के साधु संत के रुप में देखने लगते हैं । अच्छा कर्म करना तो बहुत दूर की बात है, गलत काम करते रहनेवाले भी चिन्ह या भेष धारण से अपनेको धर्म का ज्ञाता,धार्मिक, पूजनीय और अलौकिक मानने लगते हैं । ऐसे लोगों से तो धर्म की ही बदनामी होती है ।

केवल एक इस्लाम में भगवान को भगवान, और प्रचारक और गुरु को गुरु कहता है , लेकिन हिन्दू के गुरु को तो कालान्तर मे भगवान ही बना देने का प्रचलन होने के कारण हिन्दू सनातन धर्म के लिए तो गुरु ही खतरनाक साबित होते रहे हैं । ऐसों ने ही सयकडों भगवानों और सम्प्रदायों को जन्म दिया है और खुद भी भगवान बन गए हैं ।

कंचन :– तो कैसा गुरु अच्छा गुरु होता है ?

किशोर :– यदि सेवा साधना और आत्मिक उन्नति नहीं है तो कपडा रंगाए हुए , जटाजूट बनाए हुए, विभूती घिसे हुए ,टीका चंदन लगाए हुए , जोगी बाबा लोग , धार्मिक कर्मकाण्डी लोग , तथाकथित संत महन्त,यिन सबको केवल बोलचालकी भाषामे गुरु कहा जा सकता है । समाज में यद्धपि इनका भी कुछ योगदान हो सकता है लेकिन इनको अगर धर्म व्यवसायी कहें तो अत्युक्ति न होगी । क्यांकि "**गु**" का अर्थ अंधकार और "**रु**" का अर्थ प्रकाश अर्थात जो अंधकार से निकालकर प्रकाशमे ले जा सकता है वह गुरु है । गुरु सर्व समर्थ और स्वयं प्रकाशित हो रहा होता है जिसने मानव शरीर में रहकर भी एक दिव्य चेतना का रुप ले रखा है तो वह सत्गुरु है, जिसकी पहुँच भगवान तक हो और वह स्वयं भगवानमय हो गया हो ,जो निर्लिप्त भाव से वास्तविक संत हो , जाति,धर्म,सम्प्रदाय,सांसारिक शक्ति और मोह माया अहंकार से पूर्ण मुक्त हो और जिसने सेवा को जीवन का लक्ष्य बना रखा हो । वह गुरु है । आदि शंकराचार्य , स्वामी रामकृष्ण परम हंस,महर्षि अरविंद, देउरहवा बाबा,सिरडी के साईं ,रामानुजाचार्य, संत रविदास , रामदास, मीरा बाई , पं श्रीराम शर्मा आचार्य जैसे संत महामानव इस संसार में नितांन्त कम हैं ।

आदित्य : गुरु की क्षमता और गुरु शिष्य सम्बन्ध कैसा होता है ?

रामजी : जो हमारी जिज्ञासा का समाधान करता है, मार्ग दर्शन करता है और विकास में सहयोग करता है वह भी गुरु होता है । लेकिन जो आत्मिक उन्नति में सहयोग करता है वह सद्गुरु होता है । वह जीवन मरण के बन्धन से मुक्ति दिलाने और परमानन्दस्वरुप ईश्वर से साक्षात्कार कराने मे सक्षम होता है ।

मानव चेतना के उच्चस्तरीय तल को पराचेतना तल कहा जाता है , जहाँ हमको आत्मिक अनुभूति होती है । इस स्तर मे प्रवेश करने के लिए सद्गुरु की आवश्यकता होती है । सद्गुरु अचेतन के संस्कार को काटकर पर चेतन में प्रवेश करने मे सहायता करता है । यह काम और कोई भी नहीं कर सकता है । ऐसे ही हमारे जीवन की स्थूल , सूक्ष्म और कारण आयाम में से सूक्ष्म आयाम के विकास के लिए सद्गुरु की आवश्यकता पडती है ।

गुरु की कई श्रेणियाँ होती हैं । संसार से हमारा परिचय कराने और साधारण जिज्ञासा का समाधान करने वाले माता पिता प्रथम गुरु होते हैं । भौतिक उन्नति में सहयोग करने वाले शिक्षक जैसे गुरु द्वितिय श्रेणी में , मानसिक और भावनात्मक उन्नति के सहयोग करने वाले सामान्य स्तर के जोगी बाबा ,संत महन्त , और धार्मिक कर्मकाण्डी तृतिय स्तर तथा आत्मिक उन्नति मे मार्ग दर्शन करने वाले सद्गुरुको चौथी सर्वोच्च श्रेणी में रख सकते हैं । गुरु केवल वह चीज ही दे सकता है जो चीज उसके पास होती है और जो चीज उसके पास होती ही नही है वह चीज वह किसी और को दे भी नही सकता है । तसर्थ देने और पाने वाले दोनो के क्षमता का प्रश्न महत्वपूर्ण होता है । कोई साधारण गुरु अपने शिष्य को आत्मिक उन्नति मे मार्गदर्शन नही कर सकता है और समर्थ गूरु सामान्य स्तर के शिष्य के आत्मिक विकास के लिए असाधारण ज्ञान और मार्गदर्शन नही दे सकता है । क्योंकि गुरु शिष्यका हाथ पकडकर या उसे कंधे पर बिठाकर गंतव्य तक नहीं पहुचाता है वह तो शिष्य के लिए केवल मार्ग साफ भर कर देता है । चलना तो स्वयं शिष्य को ही पडता है ।

कंचन :– गुरुकी मूर्ति मन्दिरमे रख सकते हैं और पूजा कर सकते हैं कि नही ?

किशोर :–योनिज अर्थात माता के पेट से सामान्य व्यक्ति जैसे जन्मे हुए आदमी को मृत्यु के बाद पिण्ड दिया जाता है , लकिन अयोनिज अर्थात जो माता से उत्पन्न नहीं होता है , स्वयं प्रकट होता है उसको यज्ञमे आहुति दी जाती है । इस कारण आदमीको गुरु मानना और श्रद्धा करना अलग बात है लेकिन देव स्थान और पूजास्थान में किसी मानवमूर्ति या फोटोको नहीं रखा जाना चाहिए , आहुति नहीं देनी चाहिए ,फूल चढाकर सम्मान प्रकट भले ही कर लो लेकिन धूप दीप से पूजन के साथ हवन यज्ञ नहीं करना चाहिए । हिन्दू धर्मशास्त्र मानव मूर्ति देवस्थान – पूजन स्थानमे रखने का स्पष्ट निषेध करता है । जो ऐसा काम करता है उसे अज्ञानी ही कहा जा सकता है ।

नितिनः मैं तो यह समझता हूं कि झगडे की जड धार्मिक विभिन्नता है। यदि पूरे संसार में एक ही धर्म हो जाय तो संसार की बहुत बडी समस्या और अशान्ति मिट सकती है ?

यज्ञ गुरुः स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि संसार से सब तरह के भेदभाव दूर होना असम्भव है । विभिन्नताएँ तो रहेंगी ही । उनके बिना जीवन असम्भव है । विचारों का यह पारस्परिक संघर्ष और विभिन्नता ही ज्ञान का प्रकाश और गति का कारण है

। इस दुनिया में परस्पर विरोधी अनन्त भाव विद्यमान रहेंगे और जरुर रहेंगे, परन्तु इसी के लिए एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखें अथवा परस्पर लडें, यह गलत है । अगर कोई यह कहे कि ईश्वर तक पहुँचने का सब के लिए एक ही रास्ता है तो यह गलत है । ऐसी सोंच हानिकारक है, निरर्थक है और सर्वथा त्याज्य है । यदि हर एक आदमी की धार्मिक मान्यता एक हो जाय और पूरी दुनिया के लोग एक ही रासते पर चलने के लिए उद्यत हो जाँय तो संसार के लिए बहुत घातक होगा । तब तो सब धर्म और सारे विचार नष्ट हो जाएँगे,सब लोगों की वैचारिक स्वतन्त्रता की शक्ति नष्ट हो जाएगी । विविधता जीवन का मूल सूत्र है । यदि इसका अंत हो जाय तो यह दुनिया नहीं चलेगी । जब तक विचारों में भिन्नता और वैचारिक स्वतन्त्रता रहेगी तब तक ही जीवन गतिशील रहेगा । इस लिए मतभिन्नता के कारण हमें अन्य रास्ते पर चलने वालों से लडना व्यर्थ है । तुम्हारा रास्ता तुम्हारे लिए अत्युत्तम है और उनका रास्ता उनके लिए अच्छा है । लोगों के इन रास्तों को संस्कृत मे इष्ट कहते हैं । तुमको जिस किसी मंदिर में जाने से यह विश्वास हो कि इससे तुम्हें भगवान मिल जाएँगे वहीं जाकर उपासना करो । लेकिन उन मार्गों पर विवाद न करो । यदि तुम ईश्वर को बाँटते हो, रास्तों को ठीक बेठीक कहकर झगडते हो तो ईश्वर की ओर जाने वाला रास्ता तुमसे छूट जाता है तुम पशुता की ओर बढते चले जाते हो ।

हमारी समस्या को हल करने का रास्ता है वैराग्य, त्याग, निर्भीकता और प्रेम । बस यह सब ही टिकने योग्य हैं । बिना त्याग के धर्म नहीं हो सकता है ।

कंचन : मूल तत्व परब्रहम परमेश्वर हैं और ब्रह्मा, विष्णु, महेश उनकी छाया हैं तो इसका अर्थ क्या है ?

तब भीड में से एक प्रौढ व्यक्ति उत्तर देनेके लिए आगे बढे -

श्याम : जो नित्य चेतन अविनाशी, परब्रह्म परमात्मा है उनसे विष्णु और विष्णु के नाभी से उत्पन्न कमल के फूल में ब्रह्मा प्रकट हुए हैं । शिवजी भी परब्रह्म के ही अंश हैं ।

आशुतोष : ईश्वर सर्वव्यापक है तो इस व्यापकता का भी तो कोई स्वरुप होगा । वे किस रुप में कण कण मे व्याप्त रहते हैं । उस व्यापकता का आभाष कैसे होता है ?

अभी तक की चर्चा परिचर्चा में संलग्न व्यक्तियों ने आशुतोष के प्रश्नको शायद अच्छी तरह से न समझा हो अथवा और कोई कारण रहा हो, सब चुप रहे । जब कोई न बोला तो वयोवृद्ध महात्मा ने कहा -

यज्ञ गुरु : भगवानके बारे में इतनी चर्चा परिचर्चा होने के बाद भी भगवानके स्वरुप के बारे में ही जिज्ञासा उठ्ने के कारण सर्व प्रथम तो भगवान का अस्तित्व है या नहीं इसी का निराकरण होना पडा । तसर्थ आपलोग अब इस बारे में अपने अपने विचार रखें और ठोस आधार-प्रमाण प्रस्तुत करें ।

आदित्य : ईश्वर के अस्तित्व में तो कोई शंका ही नही है । भागवत पुराण का अध्ययन करने पर हम इस संसार के सम्पूर्ण कामको तीन वर्ग में रख सकते हैं । पहला काम उत्पादन अर्थात श्रृष्टि, दूसरा व्यवस्थापन अर्थात पालन पोषण और तीसरा काम समापन अर्थात विलय । ईश्वर ने श्रृष्टि के लिए ब्रह्मा, पालन पोषण के लिए, विष्णु और संहार के लिए महेश अर्थात शंकर के रुप में अपने को प्रकट कर रखा है । ईश्वर के यह तीन प्रमुख रुप हैं इसके अलावा अन्य देवी देवता भी उन्हीं ईश्वर के ही रुप हैं । यहाँ तक कि यह स्थावर, जड और जंगम सहित का यह दृश्यमान जगत और ब्रह्माण्ड उन्हीं परब्रह्म परमेश्वर का ही स्वरुप है । इस विश्व ब्रह्माण्ड के अस्तित्व से ही ईश्वरके अस्तित्व की पुष्टि हो जाती है ।

माधव : हाँ, यही सत्य है । ईश्वर ही सत्य है और सत्य ही ईश्वर है । **"एकोऽहम्-बहुस्यामि"** ईश्वर के एक से अनेक होने की इच्छा से यह श्रृष्टि हुई है । ईश्वर ने शून्य में इस समस्त श्रृष्टि को प्रकट किया है । **रामानुजाचार्य** ने ईश्वर को पुरुषोत्तम (**The highest person**) सगुण, अनन्त ज्ञान, सौंदर्य, करुणा आदि सभी गुणों का भण्डार और विश्व की श्रृष्टि, स्थिति और प्रलयकर्ता कहा है । ईश्वर को विश्वव्यापी और विश्वातीत (विश्व से विल्कुल अलग) भी बताया है ।

यज्ञ गुरु : ऐसा है तो यह भी बताओ कि ईश्वर शास्वत है । ईश्वर से पहले संसार नहीं था और वे अनन्त काल से अकेले थे, लेकिन बाद में अचानक उन्होंने एक से अधिक होने की इच्छा क्यों की ? यदि उन्होने विश्व कल्याण के लिए श्रृष्टि की रचना की है तो विश्व कल्याण की आवश्यकता क्यों पडी ? यदि कल्याण के लिए विश्व की रचना की है तो संसार में दुःख और शोक आदि अशुभ तत्व की उत्पत्ति कैसे हुई ? ईश्वर सर्वव्यापक होकर भी संसार से अलग कैसे रह सकते है ? इन बातों पर चर्चा करो ।

किशोर : भगवान कृष्ण ने गीता में कहाँ है -

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥

- गीता - ४।६

(मैं अजन्मा और अविनाशी हूँ तथा समस्त प्राणियों का ईश्वर हूँ, फिर भी अपनी प्रकृतिको अपने अधीन में करके अपनी योगमाया से प्रकट होता हूँ)

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेशु किञ्चन ।

नानवाप्तमवाप्तव्ययं वर्त एव च कर्मणि ॥

गीता - ३।२२

(हे अर्जुन । तीनों लोको में मुझे कुछ करना नहीं है । मेरे लिए कुछ अप्राप्य भी नहीं है फिर भी मैं कर्म करता हूँ)

इससे यह स्पष्ट है कि कर्म करना ईश्वर का स्वभाव है । बिना काम वे रह ही नहीं सकते हैं । फलस्वरुप ईश्वरसे उत्पत्ति, पालन और संहार हुआ करता है । जहाँ तक सांसारिक शोक और दुख की बात है, वह तो व्यक्ति स्वयं अपने प्रारब्ध अनुसार ही प्राप्त करता है । ईश्वर सर्वव्यापक हैं लेकिन संसार से अलग इस तरह से हैं जैसे कमल का बीज पानी के नीचे कीचड मे पडता है तब कमल उगता है, लेकिन कमल के पत्ते और फूल पर तो कीचड और पानी की एक भी बूंद नहीं रुक सकती है । ईश्वर और संसार का सम्बन्ध ऐसा ही है ।

आदित्य : ईश्वर यदि कल्याणकारी है तो कतिपय दुष्ट सुख समृद्धि पाते रहते हैं और सज्जन तथा परोपकारियों को कष्ट होता रहता है ? एसा क्यों ? अभी प्रारब्ध की बात उठी थी तो यह क्या चीज है ?

आदित्य के प्रश्न पर सब चुप हो गए । एक क्षण बाद यज्ञ गुरु बोले ।

यज्ञ गुरु : ईश्वर का अस्तित्व अब स्पष्ट हो चुका है तो अब प्रारब्ध को समझने के लिए पूरा कर्म सिद्धान्त समझना पडेगा । कर्म तीन प्रकार के होते हैं -

(१) संचित (२) क्रियमाण (३) प्रारब्ध

(१) संचित कर्म : संचित कर्मके दो स्तर हैं । प्रथम तो घर परिवार, पडोसी और अपने इष्टमित्रों के द्वारा जो अनुचित काम किया जाता है लेकिन उसमें यदि हम संलग्न नही होते हैं और हमारी आत्मा इस कुकर्मको स्वीकारती नही है तब भी उसका कुछ असर हम पर भी पडता है । दूसरा - अन्य व्यक्तियों के दबाव और अनिच्छा से जो काम हमें करने पडते हैं, ऐसे कामोंका दुष्प्रभाव हमारे मन के किसी कोने में दबे हुए हजारों वर्ष तक पडे रहते हैं ओर किसी समय यदि हम स्वयं अपनी तरफ से उसी स्तर के गलत काम करते हैं तो वे संचित रहे हुए कर्म भी शक्तिशाली बनकर दुख देनेका कारण बन जाते हैं । लेकिन यदि हम निरन्तर अच्छे काम करते रहते हैं तो शक्तिशाली कर्म – संस्कार के ताप से पूर्व संचित खराब संस्कार और गलत कर्म नष्ट हो जाते हैं । देव दर्शन, तीर्थाटन, पूजन, आराधन आदि कर्मों द्वारा ऐसे अनचाहे किए हुए पाप कर्म नष्ट हो जाते हैं ।

(२) **क्रियमाण कर्म** : ये शरीरद्वारा किए हुए कर्म होते हैं इसलिए इनका प्रत्यक्ष प्रभाव शरीर पर ही पडता है । जैसे नशा करने पर मतवाला होना, विष खाने से मरना आदि । शरीर चूँकि जड तत्व से बना है और भौतिक तत्व स्थूल प्रधान होता है इसलिए उसका परिणाम तुरन्त दिखाई पडता है । जैसे आग छूने से जलना । गलत आहार से पेट बिगडना, शरीर अस्वस्थ होना । शारीरिक कर्म के साथ मानसिक संलग्नता न हो और शरीरद्वारा शरीर के लिए जो काम किया जाय उसे क्रियमाण कर्म कहते हैं ।

(३) **प्रारब्ध कर्म** : यह ऐसा कर्म है जो जानबूझ कर तीव्र भावना से प्रेरित होकर किया जाता है । इस कारण इन कर्मो के संस्कार बहुत शक्तिशाली होते हैं । हत्या, डकैती, चोरी, व्यभिचार, विश्वासघात, और जालसाजी जैसे प्रचण्ड क्रूर कर्म किया जाय तो अपने ही हृदयमें बहुत तेज प्रतिक्रिया होती है । और उस प्रतिक्रिया (विजातीय तत्व) को बाहर निकाल्ने के लिए आत्मा की पवित्रता निरन्तर व्याकुल रहती है । यह बात आदमी जान नहीं पाता है । आत्मा को चिन्तन, उद्धग्निता अर्थात मानसिक दण्ड स्वयं तो पूरा हो नही सकता है इसलिए अन्य साधन और सूक्ष्मलोक से स्वचालित रुप में कोई घटनाक्रम निर्मित हो जाता है और हमारी अन्तर चेतना उसी तरहका वातावरण निर्माण कर देती है । इस प्रक्रिया में अर्थात एक बार किए हुए अपराध का प्रारब्ध बनकर दण्ड देने में कभी कभी तो बहुत समय लग जाता है । जन्मों तक लग जाते हैं । और अंत में आदमी विभिन्न तरीके से दण्ड या दुख अथवा अनिष्ट भोगने के लिए बाध्य होता है । ऐसे कामों के परिणाम से किसी हालत से भी फुसरत नहीं मिल सकती है । गीता में भगवान ने स्वयं कहा है कि कर्म करने में आदमी स्वतन्त्र है लेकिन फल मेरे अधीन में है । भीष्म पितामह ने कई जन्म पहले एक जीवित सर्प को उठाकर बबूल के पेड पर काँटों में फेंक दिया था इसलिए महाभारत काल में उन्हे वाणों की सय्या पर सोना पडा था । राम ने बालि को छिपकर वाण मारा था इसलिए जब वे कृष्ण की योनि में थे तब उन्हे भी व्याधा ने वाण मारा । ऐसी पौराणिक कथाओं और घटनाओं से आदमी को विचार और चिन्तन करने का रास्ता मिलता है ।

तुमने पूँछा है कि अन्यायी और पापी सुख भोते हुए देखे जाते हैं, क्यों ? इसका कारण यही है । जब किसी के शुभ कर्म के फल भोगका वातावरण बना रहता है और वह सुख भोग रहा होता है तब यदि वह अशुभ काम करता है तो देखने वाले उसे अशुभ कर्मका उत्तम फल भोग रहा है ऐसा ही सोंचेंगे । और ईश्वर के न्याय पर शंका करेंगे ।

उसके कुकर्म करने के समय पर यदि उसके पूर्व के सुकर्मोका फल प्राप्त हो रहा होता है, तो वह सुखी रहता है । और यदि पुण्य कर्म उसी जन्म में समाप्त नही होते हैं तो वह दूसरे जन्म भी पुण्य का बाकी लाभ प्राप्त करता है लेकिन जब

उसके पुण्य समाप्त होते हैं और पापका प्रभाव शुरु होता है तो उस समय यदि वह सुकर्म ही करता रहे, उसको अपने पहले किए हुए पापका दण्ड भोगना ही पडेगा तब सामान्य लोग यही कहेंगे कि पुण्यात्माको भगवान दुःख दे रहे हैं ।

आदित्य : प्रारब्ध और पुरुषार्थ में क्या अन्तर है । इसमें कौन बलवान है और किसकी प्राप्ति श्रेष्ठ है ।

यज्ञ गुरु : पुरुषार्थ से सब कुछ प्राप्त हो सकता है, शास्त्र अनुसार आचरण किया जाय तो पुरुषार्थ से इस भूमण्डल का साम्राज्य प्राप्त किया जा सकता है । हमें शास्त्रीय मार्गदर्शन और साधु पुरुषों के सत्संग से ऐसा उद्योग करना चाहिए कि इस जन्म के पौरुष द्वारा पूर्व जन्म के पौरुष (प्रारब्ध) को जीत सके ।

गाँधीजी ने आत्मकथा में लिखा है कि "कभी कभी हमलोग बहुत ही सावधानी अपनाकर चलते हुए भी फिसल जाते हैं और गिर पडते हैं या कोई क्षति उठानी पडती है और कभी कभी तो इतनी बडी गलती कर गए होते हैं कि जिससे हानि होनी निश्चित ही होती है फिर भी अचानक कोई ऐसा संयोग बन जाता है कि हम क्षति से साफ बच जाते हैं । इसमें पुरुषर्थका योगदान कितना होता है और दैवी अनुग्रह कितनी होती है ? और किस नियम के अनुसार आदमी गिरता है या सुरक्षित रह जाता है, यह बात बतानी बहुत कठिन है । इसका निर्णय आज तक नहीं हो सका है और भविष्य में निर्णय हो पाने की आशा भी नही है ।" इसी संदर्भ में मैकियावेली ने **"द प्रिन्स" के अध्याय २५ के दूसरे अनुच्छेद में** में लिखा है कि **"आदमी के जीवन में आधा योगदान भाग्य का और आधा योगदान कर्मका होता है ।"**

चाणक्य कहते हैं -

आयुः कर्म च वितं च विद्या निधनमेव च ।

पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥

चाणक्यनीति ४।१

जब जीव माँ के गर्भ में आता है तब ही ५ बातें निश्चित हो जाती है (१) आयु (२) मृत्युका स्थान और समय (३) कर्मफल (४) उसके भाग्यका धन (५) विद्या इसलिए मेरे विचार में पूर्व जन्म के पुरुषार्थको ही "दैव" कहना चाहिए । हमलोग अपनेको दैव के अधीन मानते हैं जो भी कर्म करते हैं वह व्यर्थ ही है कहते हैं अर्थात पूर्व जन्म के कर्मो को ही अधिक महत्व देते हैं । लेकिन यह बात गलत है । क्यों कि अर्थ और काम में तो "दैव" प्रबल होता है लेकिन धर्म और मोक्ष में वर्तमानका पुरुषार्थ ही बलवान होता है ।

ब्रह्मर्षि विश्वामित्र और पं. श्री राम शर्मा आचार्य ने भाग्य से अधिक पुरुषार्थको महत्व दिया है । उन्होने भाग्य और पुरुषार्थ को जीवन का दो किनारा कहा है । पुरुषार्थ वर्तमान है और वर्तमान के क्षणों में सिमटा हुआ होता है, उसके पास अपनी पूँजी के नाम पर केवल क्षण ही होता है । और यह क्षण जो अभी पुरुषार्थ का है वह दूसरे ही क्षण भाग्य के कोष में गिर जाता है ।

और भाग्य भविष्य मे विस्तारित होता है , भाग्य के कोष में कर्मों का अथाह समूह, संस्कारों का ढेर, कर्मबीज, प्रवृत्ति और प्रारब्ध का अतुलनीय भण्डार होता है । भाग्यकी इसी व्यापकता और शक्ति को देखकर कभी कभी तो ज्ञानी ध्यानी लोग भी भ्रमित और विचलित हो जाते हैं ।

वे लिखते हैं कि पुरुषार्थ इतना सीमित होते हुए भी असीम और अपार बलशाली भाग्यको पराजित कर सकता है । **वास्तव में पुरुषार्थ आत्मा की चैतन्य शक्ति है ,जबकि भाग्य जड कर्मों का समुदाय है और जड कर्मों का आकार कितना ही विशाल क्यों न हो ,चेतना की छोटी सी चिन्गारी अधिक शक्तिशाली शिद्ध होती है , जो दुर्भाग्य को जला देती है ।**

लेकिन पुरुषार्थ की प्रक्रिया निरंतर,अनवरत और अविराम जारी रहती है तभी पुराना भाग्य (दुर्भाग्य) मिट्ता है , और इच्छित भाग्य निर्माण हो सकता है । पुरुषार्थ का प्रचण्ड वेग आत्मा के ऊपर पडे हुए दुर्भाग्य के आवरण को हटा देता है । तब संकल्पनिष्ठ पुरुषार्थी के आत्मशक्ति से असंभव कार्य संभव होने लगता है और **मनुष्य अपने भाग्य का निर्माता स्वयं है** यह उक्ति चरितार्थ होने लगती है ।

आदित्यः आज के नये पुस्ते में प्राय ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वासका अभाव दिखता है । ऐसे में क्या ईश्वर का प्रत्यक्ष प्रमाण दिया जा सकता है ।

यज्ञ गुरु बडे सकिस्त कोने में बैठे उकुस मुकुस कर रहे थे और थोडा आसानी से बैठना चाहते थे इस लिए वे जवाब न दे पाये तो किशोर ने बात उठाई -

किशोर : फिर वही प्रश्न । अगर अभी कोई यह कहता है कि ईश्वर दिखाओ तो कोई नही दिखा सकता है । क्योंकि ईश्वर तर्क का विषय नही है, वह अनुभूतिका विषय है । अनुभूति करने के लिए हमलोग दृश्य या अदृश्य देवी देवताओंका सहारा लेते हैं । सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल, पेड, पहाड, समुद्र और वनस्पति जैसे दृश्यमान देवता और अन्य अदृश्य देवताओं के बारे में शास्त्रों में वर्णन है । यद्धपि हिन्दुओं में यह बहुदेववादी विचार धारा और विभिन्न सम्प्रदायों के कारण हम भ्रमित हो जाते हैं ।

आशुतोष : ईश्वर और धर्म कर्मको समझने की क्या कोई सरल भाषा है ?

किशोर : है । मै बताता हूँ । रामायण और पुराण आदि जो भी धर्म ग्रन्थ हैं, वो उस उस समय के समाजकी आवश्यकतावश, समाजको सही रास्ते पर चलाने के लिए लिखे गए हैं । इस कारण उसमें कथानक के साथ साथ आदर्श भी स्थापित

किए गए हैं । जब तक विज्ञानकी प्रगति नही हुई थी तब तक ये पुराण समाजको हाँकने के सशक्त माध्यम थे । । आदमीको जंगली जानवर होने से बचाने में और सभ्यता के शिखर पर चढने के लिए इन्ही का योगदान है । लेकिन आज समय बदल गया है । इस लिए आज के भौतिकवादी इन कथाओं को रसीला नही मानते हैं । और अब वर्तमान समय में धर्मको प्रत्यक्ष जाँचने और ईश्वर के बारेमें प्रमाण ढूढने की जिज्ञासा बढी है ।

उदाहरण के लिए हम जो जनेऊ पहनते हैं, यह धागा अर्थात सूत्र है, यानी **formula** है और जनेऊ की ग्रन्थि अर्थात गाँठ **Threading** है । इसका अर्थ है कि ईश्वर की प्रत्येक गतिविधि ईश्वर के बनाए हुए फारमूला से ही होती है अर्थात ईश्वरीय विधि या नीति को ही धर्म कह सकते हो । हमें System से अलग नही होना चाहिए, नीति पर ही चलना चाहिए हम भ्रमित न हों, इसलिए जनेऊ को पहने रहने का रिवाज स्थापित हुआ है ।

३३ कोटि देवताओं को सरल भाषा में तत्व कह सकते हो । इन तत्वों के बीच में क्रिया अंतरक्रिया होती रहती है । अर्थात एक दूसरे से जोडने सिकुडने और टूटने की जो निरन्तर प्रक्रिया चलती रहती है उसीको श्रृष्टि कह सकते हो । ब्रह्मा, विष्णु और महेश अयोनिज हैं अर्थात ये योनि से नहीं जन्मे है । गाँधी, क्राइष्ट, बुद्ध आदि देवदूत हैं इन्हें मैसेन्जर कह सकते हो । यह योनिज हैं । यह सब मानव योनि से जन्मे हैं इसलिए इनके विचारों में ९९% शुद्धता होती है १% समय परिस्थिति अनुसार कोई अंश के बारेमे टीका टिप्पणी हो जाती है । वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक नही भी हो सकती है । रामका आदर्श अर्थात रास्ता और कृष्णका चरित्र मननं योग्य है । यद्धपि इन दोनो चरित्रों का गुण अलग अलग है लेकिन मानव जीवन के लिए दोनो नितान्त आवश्यक हैं । यहां तक कि हिन्दू सनातन धर्म मानव जीवन को उच्च स्तर में पहुचाने के लिए भौतिक, जैविक और मानसिक आदि सभी अवस्था और व्यवस्था को परिष्कृत करने के क्रम मे भारत मे अजन्ता और एलोरा की गुफाओं और खजुराहो जैसे कई मन्दिरों के बाहरी क्षेत्र मे अंकित मनुष्य की नग्न और मैथुनी मूर्तियों को भी साधनात्मक अवलोकन, मनन एवं चिन्तन करने का मार्ग दिखाता है ।

आशुतोष : लेकिन हम तो धर्म और विज्ञान में स्पष्ट अन्तर देख रहे हैं ।

किशोर : पौराणिक विधि और प्रक्रियाद्वारा आज के आदमी को सन्तुष्ट करना कठिन है । इस कारण वैज्ञानिक तथ्य प्रस्तुत करना चाहिए यह बात तो ठीक है लेकिन इसमें हमें हमेशा यह स्मरण रखना होगा कि भौतिक विज्ञान अध्यात्म विज्ञान का परिपूरक है और दोनों की मंजिल एक है । ईश्वरको सूत्रके माध्यम से थोडा सा

जाना जा सकता है लेकिन पूर्ण रुपेण कोई नही जान सकता है । गणित और विज्ञान के सूत्र ईश्वर के तरफ ले जाने वाली सीढियाँ भर हैं ।

कंचन : भगवान और गणित ? यह क्या बात है ?

वहाँ पर बैठे हुए और लोगों ने भी आश्चर्य प्रकट किया ।

अध्याय ३

वैज्ञानिक अध्यात्मवाद

विचार विमर्श एक क्षण के लिए रुक गया । तब यज्ञ गुरु अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए तत्पर हुए -

यज्ञ गुरु : मानव सभ्यताका विकास नदी की तरह प्रवाहित हो रहा है । धर्म और विज्ञान नदी के दो किनारे हैं । नदी के प्रवाह के लिए दोनो तटों की आवश्यकता होती है । लेकिन आज हम धर्म और विज्ञान के बीच में द्वन्द पाते हैं । प्रगतिशील बुद्धिजीवी अपने आपको विज्ञान समर्थक अर्थात प्रगतिशील और धर्म मानने वालों को परम्परावादी कहते हैं । विज्ञान अर्थात तर्क बुद्धिका प्रयोग । धर्म अर्थात अन्धविश्वास और शास्त्रीय खोखला सिद्धान्त मात्र । लेकिन मेरी समझ से धर्म और विज्ञान के बीच द्वन्द है ही नही ।

हमारे संस्कार, विचार और मान्यता जैसी होती है हम उसी अनुसार बोलते और काम करते हैं । लेकिन जब संस्कार, विचार और मान्यता में कुछ परिवर्तन आता है तो हमारे अपने दृष्टिकोण (Stand point) में भी परिवर्तन आ जाता है । उपनिषद में शौनक ऋषिके एक प्रश्न के उत्तर में अंगिरा ऋषि कहते हैं ।

"द्वै विद्ये वेदितव्ये इतिहस्म परा चैव अपरा च"

अर्थात दो विद्याएँ हैं । (१) परा विद्या (२) अपरा विद्या । इन दोनो विद्याओंको समझने पर ही वास्तविकता की जानकारी हो पाती है ।

आजकी भाषा में कहें तो परा माने धर्म और अपरा माने विज्ञान है । महर्षि अंगिरा ने इन दोनो का ज्ञान प्राप्त करने को कहा है ।

इस कारण हमारे पूर्वीया समाजमें धर्म के क्षेत्र में किसी तरह के प्रयोग का विरोध नही हुआ है इस धर्म में निरन्तर प्रयोग होते रहते हैं । धर्म में विज्ञान और विज्ञान में धर्म के सूत्रों का प्रयोग और पालन होता आया है । धार्मिक और वैज्ञानिक जो भी सिद्धान्त हों, दोनो में तर्क वितर्क और अनुसन्धान होता रहा है और इनके सिद्धान्तों को कसौटी पर कसकर इनकी उपयोगिता और सत्यता का निरन्तर परीक्षण हुआ करता है ।

रामजी : लेकिन यह दृष्टि विन्दु और दृष्टिकोण की बात ?

यज्ञ गुरु : हाँ । अब मैं उसकी बात करता हूँ पश्चिम में आधुनिक युग के विज्ञानका विकास सोलहवीं शताब्दी से शुरु हुआ माना जाता है । उस समय वहाँ दो पंथ दिखाई पडे । एक पंथ में यह कहा गया कि गणित के सूत्रों को तार्किक ढंग से प्रस्तुत करके प्रयोग, परीक्षण, विश्लेषण और वर्गीकरणद्वारा सिद्धान्त निर्माण अर्थात

सत्य की खोज की जा सकती है लेकिन दूसरे पंथ में किसी "सम्पूर्ण" को समझने के लिए उसके टुकडे टुकडे करते हुए अंत में सबसे छोटे टुकडे के बारे में यदि जानकारी पा ली जाय तो "सम्पूर्ण" को ही समझा जा सकता है । ऐसी धारणा बनी ।

गुंजन : हमारे शास्त्र में **"यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे"** कहा है । वही है क्या गुरुजी ?

यज्ञगुरु : हाँ, वही बात है । यूरोपियनों ने इसी को तो प्रयोग किया । लेकिन इस प्रयोग में कुछ ऐसे तथ्य सामने आए जो परम्परागत ईशाई समाज के धर्म विरुद्ध थे । बाइबल की ओल्ड टेस्टामेन्ट में "पृथ्वी केन्द्र है और ग्रह इसकी परिक्रमा करते हैं" कहा गया है लेकिन जब गैलीलियो और कापरनिक्स ने इससे उल्टी बात कही अर्थात यह कहा कि पृथ्वी घूमती है,तब तो धार्मिक क्षेत्र में हडकम्प मच गया । धर्म और विज्ञान में विरोध पैदा हो गया । धर्म ने विज्ञान को झूठा बताया और विज्ञान ने धर्म को विकास विरोधी होने का आरोप लगाया । धार्मिक लोगों के द्वारा गैलीलियो दृष्टिविहीन कर दिए गए । जान केपलर ने अपनी प्रतिभा से ७५० ग्रहोंका अध्ययन करके यह बताया था कि पृथ्वी जैसे और ग्रह भी हैं इसपर धर्माधिकारियों ने उनका विरोध किया और उनको खदेडते रहे अंतमें वे नितान्त दरिद्रता की स्थिति में मर गए । टाइकोब्रुनाई को तो जिन्दा ही जला दिया गया ।

इस प्रकार यूरोप में धर्म ने विज्ञानको अपना शत्रु मानकर वैज्ञानिकों पर अत्याचार करने के कारण विज्ञानका झुकाव भौतिकवाद की ओर चला गया । और विज्ञान ने धर्म के सिद्धान्त – पारलौकिकता, अतीन्द्रयता, आदिको कल्पना कहना शुरु कर दिया । उसने केवल प्रत्यक्ष प्रमाणको माना इसलिए यही भौतिकवादी धारा विज्ञान में प्रवाहित हो गई । और यही विज्ञानका Stand Point बन गई ।

कालान्तर में भारत सहित पूर्वी दुनिया में भी जब अंगरेजों का राज्य हुआ तो यहाँ भी अंग्रेजी नीति और शिक्षाका प्रसार हुआ और पूर्वी जगत के पाठ्यक्रम और मान्यता में यूरोपियन Stand point आ गया । परिणाम स्वरुप हुआ यह कि जहाँ पूर्वी दर्शन में महर्षि कणादि जैसे महर्षियों ने धर्म और विज्ञानको एक दूसरेका पूरक माना था और प्राचीन काल में लिखे गए धर्मग्रन्थों में विज्ञानका भी विकास हुआ था और प्रचलित धार्मिक मान्यताओं में संशोधन और सुधार के रुप में तमाम स्मृति और पुराण लिखे गए थे तथा विज्ञान को भी लोक परलोक, स्वार्थ और परमार्थ जैसे क्षेत्र में उतारकर धर्म से समन्वय स्थापित हुआ था, धर्म और विज्ञान में आपस में कभी कोई विरोध था ही नहीं, लेकिन यूरोपियन शिक्षा और मान्यता ने नव शिक्षार्थियोंको चकाचौंध कर दिया और यहाँ भी विज्ञान भौतिकवादी धारा में बह चला और धर्म से

दूर हो जाने के कारण प्रमाणवाद और भौतिकवाद अब बडी भारी समस्या के रुप में दिखाई दे रहा है ।

इसी कारण से हमारे यहाँ भी दूसरों के देखासेखी दो धाराएँ दिख रही हैं । एक तो वह सर्वसाधारण व्यक्तियों का समूह जिसका Stand point पूर्विया अर्थात भारतीय है और जो धर्मको विकास की सीढी मानता है, जीवनका अमूल्य तत्व कहता है । लेकिन जिसका Stand point यूरोपियन है उसकी दृष्टि में धर्म विज्ञान का विरोधी है । इसी लिए तो साधारण लोग अँग्रेजी शिक्षा पाए हुए लोगों को बेधर्मी कहते हैं ।

इसीलिए मैने पहले ही कह दिया है कि जिसका दृष्टिविन्दु जैसा होगा उसका दृष्टिकोण उसी अनुरुप होगा । किसी ने कहा भी है :

नजर बदली नजारे बदल गए ।

कस्ती बदली किनारे बदल गए ॥

हिन्दूओ के प्रयोग में आ रहा धर्म शव्द धृ धातु से बना हुआ है । जिसका अर्थ धारण करना होता है । वेद में **"अतो धर्माणि धारयेत"** कहा गया है । अर्थात आचरण और व्यवहार का वह नियम जो धारण करने योग्य है वह धर्म है । यह तो बहुत ही गम्भीर बात है । क्योंकि धारण करने की क्रिया "धारणा" से सम्बन्धित है और धारणा विचार से । विचार परिस्थितियों और समय तथा स्थान से प्रभावित होते हैं और इनके पीछे संस्कार भी खडे रहते हैं । धारणा मे दो बातें आती हैं । (१) अस्तित्व रक्षा और (२) विकास का मार्ग । इस कारण अस्तित्व की रक्षा करते हुए सर्वांगीण विकास करने का नियम , प्रक्रिया और तरीका ही धर्म है ।

आदित्य : लेकिन विकासका प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो विज्ञान से है और विज्ञान तो ईश्वर की कल्पना ही नही करता है तब फिर धर्म और विज्ञान एक दूसरे के सहयोगी कैसे हुए ?

यज्ञ गुरु : बात तो उसी यूरोपीय दृष्टिकोण की ही है न ?यूरोप में जब धर्माधिकारियों ने विज्ञान का विरोध किया तो वेज्ञान ने धर्म को पाखन्डी बताया जिससे ईश्वर की भी अवहेलना हुई । अब विज्ञान की बात को भी अच्छे से समझो । यूरोप में जब विज्ञान विकसित होने लगा तो इसकी अध्ययन की दो शैलियाँ दिखाई पडी । प्रथम तरीका यह रहा है कि किसी पूर्ण चीजको खण्ड खण्ड करके अन्तिम सबसे छोटे खण्डका अध्ययन अनुसन्धान करना और पूरे ब्रह्माण्ड की जानकारी लेना । और दूसरा तरीका यह है कि सम्पूर्ण संसारकी एक ही बार में पूरी जानकारी लेना । यह बात पहले कही जा चुकी है ।

संसारका खण्डीकरण करने वालों ने कहा कि यह संसार १०८रासायनिक तत्वों से बना हुआ है । तत्व अर्थात सबसे छोटी इकाई । इसलिए इसका खण्डीकरण नहीं हो सकता है । बाद में वैज्ञानिकों ने इसको भी तोडा और अन्तिम छोटी इकाई को **"एटम"** अर्थात परमाणु कहा । अब यह सबसे छोटी इकाई होनेके कारण यह नहीं टूट सकती है, यह सिद्धान्त प्रतिपादन हुआ । लेकिन कुछ समय बाद एटम भी टूट गया तब अन्तिम छोटी इकाई को "एलेक्ट्रान कहा गया । फिर यह भी टूटा और न्यूकिलियस आया । फिर न्यूकिलियस में दो टुकडे हुए और एक को प्रोटोन और दूसरे को न्यूट्रोन कहा । अब एलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन अन्तिम सत्य के रुप में स्थापित हुए । लेकिन फिर मेसोन, पायोन, और हेड्रोन कई कणों में तत्वों का विभाजन हुआ और आज स्थिति यह है कि अब लगभग २०० प्रकार के कण विद्यमान हैं । लेकिन फिर भी इसीको अन्तिम तो कहा ही नहीं जा सकता है ।

विज्ञान में एक समस्या तब उठ खडी हुई जबसत्य का पता लगाने के लिए एलेक्ट्रान को गामा किरणों से छुआया गया । लेकिन गामाका एलेक्ट्रान से सम्बन्ध होते ही एलेक्ट्रान का रुप ही बदल गया, वह कुछ और ही हो गया । इस प्रकार बडी विचित्र अवस्था हो गई कि जिसके बारे मे पता लगाना है उसे जब कसौटी पर कसने को सोंचा जाता है तो उसका रुप ही बदल जाता है । वह कुछ दूसरा तत्व बन जाता है । तब विज्ञान में द्वन्द खडा हो गया और सत्यको जानने का रास्ता बन्द हो गया । परिणाम स्वरुप विज्ञान में "कार्य और कारण में निश्चित सम्बन्ध होता है "यह सिद्धान्त ही गलत हो गया तब **"अनिश्चितता" का सिद्धान्त Theary of uncertanity** को लाना पडा । इसी तरह **Staven Hawking** सहित तीन वैज्ञानिकों ने **theory of general relativity** के सम्बन्ध में विश्लेषण करते हुए यह ब्रह्माण्ड **Bing Bang** से उत्पन्न हुआ है, जो ऐसी मान्यता रखते थे, लेकिन अभी अभी विश्व की सबसे बडी वैज्ञानिक संस्था **NASA** ने उस विश्लेषण को गलत साबित करते हुए हिन्दू धर्म के सिद्धान्त या पूर्वीया दर्शन को ही स्वीकार करते हुए ब्रह्माण्ड के आदि और अंत नहोने की पुष्टि की है । इससे तो वह विज्ञान जो निश्चयात्मक Deterministic था, उसी विज्ञान में ही "अन्तिम सत्य कुछ भी नहीं है" का सिद्धान्त आ गया । विज्ञान चक्कर खा गया । वह तो चौराहे पर दिशाविहीन खडा हो गया । इस विशाहीनता का प्रमुख कारण यह है कि विज्ञान ने अपनेको भौतिकता में बाँध रखा है । यूरोपियनों ने एक तो हिन्दू दर्शन की **"आत्मा"** के लिए अँग्रजी में कोई भाव ढूँढ न सके इस लिए पहले तो इसे Soul कहा लेकिन बाद में इस शव्द से अच्छा Mind शव्द को बताया और वैज्ञानिकों ने कह दिया कि Matter cf}/ Mind अलग अलग चीजें हैं । इन दोनो को एक साथ जोडकर देखने वालों को या यों कहें कि विज्ञान में चेतना conseiousness का महत्व स्वीकारने वालों को यूरोपीयन वैज्ञानिकों ने अवैज्ञानिक Unscientific कहा । परिणाम स्वरुप विज्ञान के कदम आगे

भले ही बढ रहे हों लेकिन उसने सत्य की खोज नही कर पाई । आदित्य ! तुम विज्ञानके शिक्षक हो । इसलिए इसको और बढिया से समझ सकते हो । विज्ञान ने "मन" और "चेतना" को समझने की अवहेलना की है तो मानव जीवनका कोमल पक्ष ही उस से अलग हो गया है । विज्ञान ने मनुष्य को Matter (पत्थर) की तरह अध्ययन करना शुरु किया । वह भूल गया कि आदमी जीवित जाग्रत चेतन सत्ता है । डार्बिन ने तो Matter को ही केन्द्र में रखकर जीव विज्ञान में अनुसन्धान शुरु किया । और कहा कि **Servival is the fittest' "जो सामर्थ्यवान है वह जीवित रहता है"** । अर्थात दूसरे को मारकर भी अपने को बचाया जा सकता है । इसको मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन और माल्थस ने अर्थशास्त्र में प्रयोग किया, फलस्वरुप अधिकाधिक धन आर्जन का सिद्धान्त आया जिससे शोषणको प्रोत्साहन मिला । यह सब कितना गलत होता चला गया है । इन सब बातों का केन्द्र "मैकानिकल वर्ल्ड और उसपर विजय पाने की अवधारणा है ।"

अब हम भारतीय चिन्तन को देखें । यहाँ शताब्दियों पहले महर्षि कणाद ने कहा था कि यह संसार परमाणु से बना है । उन्होने तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, जीवात्मा, देश और काल ये सभी जड हैं, द्रव्य हैं कहा था । अब और प्रमाण देखें :

वृष्णस्ते, वृष्ण्यं शवो वृषा वनं वृषा मदः ।

सत्यं वृषन् वृषेदसि ॥

ऋ. भाग४।६४।८१८०।२

(हे सोम देव आपका बल वर्षणशील है) (प्रकृति के प्लाज्मा का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक भी अब यह मान चुके हैं कि सूक्ष्म उर्जा कणों की वर्षा इस भूमण्डल पर चारों ओर से हो रही है । इसी तथ्य का संकेत इस श्लोक में है ।)

हिरण्य गर्भं परम मनत्युद्यं जना विदुः ।

स्कम्भस्तदग्रे प्रासिञ्चद्धिरण्यं लोके अन्तरा ॥

अथ ८।७।२८६५।२८

(सामान्यतया हिरण्यगर्भ को अवर्णनीय माना जाता है उसे सर्व प्रथम स्कम्भ अर्थात आदि सनातन देवता ने इस लोक में प्रसिञ्चित किया था । हिरण्य गर्भ माने श्रृष्टि का मूल उत्पादक प्रवाह जो परम आकाश से उत्पन्न हुआ है ।)

आज भी विज्ञान इस मूल उत्पादक प्रवाह को ढूँढ रहा है जिसे वेद ने बहुत पहले ढूँढ लिया था ।

यह इतनी बडी बात है कि यहाँ तक पश्चिमी विज्ञान आज भी नहीं पहुँच सका है ।

आइन्सटाइन ने इस ओर थोडा सा मन बनाया प्रतीत होता है । क्यों कि उन्होने कहा कि "सत्य" तक पहुँचने के लिए मन और बुद्धि के पार जाना जरुरी है अर्थात भौतिकता की सीमाको पार करना पडेगा । लेकिन भारतीय दर्शन में तो सत्य से साक्षात्कार करने के लिए बाहर की खोज बन्द करके अपने अन्दर ही प्रवेश करना पडता है । अन्तरमुखी होना पडता है । शुरु में जिन १०८ तत्वों की बात आई है वह तो हमारी माला में १०८ दाने होते ही हैं और एलेक्ट्रोन, न्यूट्रोन, प्रोटोन अर्थात उत्पत्तिकर्ता, संचालक और नष्ट कर्ता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) यह प्राचीन धारणा मनन योग्य है ।

पश्चिमी विज्ञान "कण" के सत्य तक यद्धपि नही पहुँच पाया हैं लेकिन "कण समूह में काम करते हैं और जब समूह में काम होता है तो उर्जा की श्रृजना होती है ।" इतनी बात वह जान चुका है और सम्पूर्ण उर्जाको चार वर्ग में वर्गीकृत किया है ।

(i) Electromagnetic force

(ii) Gravitational force

(iii) Nuclear

(A) strong interaction (B) weak interaction

उसमें कहा गया कि इन सबको जोडने पर एक महाशक्ति उत्पन्न होती है ।

लेकिन इस से बहुत पहले पौराणिक काल में पूर्वीय ऋषि महर्षियों ने सम्पूर्ण विश्व उर्जाको ९ खण्ड में वर्गीकृत करके अंत में **"संघे शक्ति"** की अवधारणा का विकास किया था जिसे धार्मिक भाषा में नवदुर्गा कहते हैं । अब पश्चिम में वैज्ञानिक और अध्यात्मिक चित्तकों की गल्ती और पूर्वीय ऋषियों की बुद्धिमता तो स्पष्ट हो गई है ।

इसलिए भौतिकता और अध्यात्मिकता इन दोनों का समन्वित विकास होना चाहिए । समग्र विकास इसे ही कहते हैं । इसके लिए सर्वप्रथम अपने आचरणको सुव्यवस्थित करना चाहिए । जब तक आचरण शुद्ध नहीं होगा तब तक हम समग्रता में प्रवेश ही नहीं कर सकते हैं । उदाहरणके लिए रसभरी मिठाई बनानेका तरीका यदि पुस्तक में लिखा है तो पुस्तकको निचोडने से मिठाई तो मिलेगी नहीं । इसी लिए "आचार प्रथमो धर्मः" कहा गया है । **धर्म का अर्थ केवल प्राणी ही नहीं , सम्पूर्ण श्रृष्टिका समन्वयात्मक विकास एवम् समृद्धि का व्यवहारिक दर्शन भी है ।**

संत हरिदास ने तो अपने शिष्य तानसेन से कहा था कि **धर्म मृत्यु की विधि द्वारा जीवन को प्राप्त करने का द्वार है** लेकिन अँग्रेजी शव्द Religion का मतलब किसी एक मार्ग अर्थात Path को रियलाइज करना अर्थात मानना या स्वीकार करना है । और जहाँ मान्यता की बात है वहाँ ऐच्छिकता की बात आ जाती है अर्थात उसे मानो या नमानो । इसलिए **Religion शव्द धर्म शव्द के समग्र भाव को नहीं समेट सकता है । संस्कृत के धर्म शव्द का भाव व्यक्त करनेवाला अँग्रजी भाषा में शव्द ही नही है ।** यह Religion शव्द यूरोपियन लोगों के परिवेश में जन्मा है लेकिन जिसको धर्म कहा गया वह शव्द संस्कृत भाषा का है और संस्कृत क्योंकि आर्यों की आदि भाषा है, देवभाषा है, इस लिए इस शव्द को यद्धपि हिन्दू के साथ जोडा गया लेकिन यह धर्म तो मानव मात्र की उच्च जीवन पद्धति है और शाश्वत भी है । इसका अर्थ बहुत ही व्यापक है । इस लिए अधार्मिक तो संसार मे. कोई भी नहीं है । यहाँ तक कि कोई पदार्थ भी अधार्मिक नही है । नास्तिक भी धर्म के शाश्वत सिद्धान्तों से अपने को पूर्णतया अलग नहीं रख सकता है । प्राणी जगत में भोजन करना, पानी पीना, सोना, मलमूत्र विसर्जन करना, मौसम अनुसार कपडे पहनना, अर्थात शरीर का पालन पोषण और सुरक्षा भी तो धर्म ही है । इस प्रकार कमोवेश धार्मिक तो जो कोई भी होता ही है । इसके बाद ही किसी सम्प्रदाय या पंथ को स्वीकारने की बात आती है । इस लिए संस्कृत में. धर्म कहे हुए शव्द के साथ तो अनिवार्यतया प्राकृतिक रुप से सभी जुडे हुए ही हैं और धर्म। सभीका एक ही है –"मानवोचित व्यवहार "। केवल पंथ फरक होता है । इस **सनातन धर्मका सम्बन्ध मन्दिर, मस्जिद गुरुद्वारा और चर्च तक ही सीमित नही है बल्कि इसका सम्बन्ध तो मानव, समाज, श्रृष्टि, और सम्पूर्ण विश्व के सकारात्मक विकास से सम्बन्धित है ।** जब इस तरह देखेंगे तो विज्ञान और धर्म में विरोध कहाँ रहा ? यह तो शरीर और अंग के रुप में हैं । जीवन जीने की कला अर्थात विधि और नीति ही धर्म है । अर्थात धर्मनिरपेक्ष (secular) तो कोई हो हीं नही सकता है । सच कहा जाय तो secular का पर्यायवाची धर्मनिरपेक्षता हो ही नहीं सकता है । यह तो शब्द ही गलत है । यह बात अच्छी तरह से समझ लेनी चाहिए कि नदी, पहाड, वन, वृक्ष, पशु, पंक्षी, कीट पतंगे कोई भी धर्म निरपेक्ष हो ही नही सकता है क्योकि सभी के जीवनका कुछ नियम और क्रम है और वही धर्म है । आजकल की बात करें तो सबसे शक्तिशाली संस्था राज्य है लेकिन धर्म निरपेक्ष (Secular) तो राज्य भी नही हो सकता है,क्योंकि राज्य के पांच रुप हैं–१,संरक्षक २, उद्यमी ३, आपूर्तिकर्ता ४,मध्यस्थ, ५, न्यायकर्ता । अर्थात राज्यको स्वयं अपने स्वरुप और जनता की रक्षा करना तथा जनता की भौतिक,नैतिक,आत्मिक और मानसिक उन्नति में भरपूर योगदान करना राज्यका धर्म है । हाँ पागल को कुछ देर के लिए धर्म निरपेक्ष कह सकते हो । **यूरोप में ,विशेषतया रोम मे, धर्म सत्ता और राज्यसत्ताके बीच में चले हुए**

करीब ३०० वर्ष तक के लम्बे द्वन्द में राज्यसत्ता को धर्मसत्ता के निरंकुश नियंत्रण और स्वेक्षाचारिता से मुक्त करने के लिए यह शव्द विकसित हुआ था । अन्यत्र जहाँ वैसी परिस्थिति नहीं है ,वहाँ यह शव्द तो प्रयोग हो ही नही सकता है । हाँ राज्य को पंथ निरपेक्ष बनाने तक का प्रयाश किया जा सकता है ।

वेद में **"विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्यशे ।**

इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥

ऋग्वेद १।१२।१९ । जिसका अर्थ है –

किसी धार्मिक ग्रन्थ या वेद मन्त्र को सुग्गे की तरह कंठस्थ करने से कोई लाभ नहीं हो सकता है । हमें उन नियमों को जीवन में धारण करना चाहिए ।

आदित्य : विज्ञान क्योंकि भौकिवाद की ओर उन्मुख है,और भौतिकवाद व्यक्तिगत सुख को महत्व देता है, इस लिए व्यक्तिगत सुख का गुण दोष क्या है ? सुख के सम्बन्ध में श्रेष्ठ धारणा क्या है ? विज्ञान सम्मत सुख क्या है ?

रामजी : सुख को वैज्ञानिक और अवैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता है । यह सामाजिक विषय है जिसका सम्बन्ध मानवीय भावना से है और यह लोक परलोक के चिन्तन का विषय भी है । यह नितान्त गूढ विषय है । सुख और दुख मन की अनुभूति है । इस विषय में यद्धपि सभी के अपने अपने सोंच और परिभाषा हो सकती है , लेकिन इसका शाश्वत अर्थ भी है । सुख को भौतिक, मानसिक और आत्मिक अथवा आध्यात्मिक तीन श्रेणी मे विभाजित किया जा सकता है । आदमी के जीवन को सरल और सुन्दर बनाने वाले साधनों की प्राप्ति को भौतिक सुख कहा जाता है । इच्च्छा अनुसार का घर, जमीन, नोकरी, धन , सम्पदा, सवारी साधन, भोजन वस्त्र, मनोरंजन की सामग्री आदि । मानसिक सुख का अर्थ स्त्री, संतान और नातेदारों की प्राप्ति तथा भेटघाट, पर्यटन, भ्रमण आदि , और आध्यात्मिक सुख का अर्थ चित्त शान्त और संतुष्ट होने के प्रकृति के काम । इस प्रकार के सभी कार्यों के प्राप्तव्यों को सुख कहते हैं ।

आदित्यः सभी सुख एक समान तो नही होते हैं तब इनकी मात्रा और गुणवत्ता कैसे निर्धारित की जा सकती है ?

रामजी : मैने पहले ही कहा है कि सुख एक अनुभूति है । इस लिए इसकी मात्रा अलग अलग ही होती है और अलग अलग किसिम के सुखों का स्तर एक ही स्तरका हो सकता है । उदाहरण देखें :

(१) एक प्रौढ व्यक्ति है , धन धान्य, विद्या बुद्धि, पत्नी पुत्र पौत्रादि से भरिपूर्ण परिवार है, लेकिन, कुछ वर्षों से पत्नी असाध्य रोग से पीडित है । पति को पत्नी का प्रेम ,

सेवा और सहयोग से वंचित होना पडा है काफी समय तक पत्नी के स्वस्थ्य नहोने और डाक्टरों द्वारा पत्नी को असाध्य रोग से पीडित होने की द्घोषणा के बाद यस निराश और हताश पति एक दूसरी पति परित्यक्ता और समाज मे अवहेलित पीडित दुखी अवस्था की युवती से प्रेम प्रसंग शुरु करते हैं । परिवार, इष्ट मित्र, समाज और राज्य सभी लोग इस काम को गलत बताते हैं । लेकिन वे अपनी जिन्दगी चार दिन की है और भरपूर सुख ले पाने का अवसर भी है, तो इस सुख से वंचित रहना बुद्धिमानी नही है, इसके साथ ही समाज में अवहेलित और दुखी स्त्री को सहारा, प्रेम और प्रतिष्ठा देना तो मानवीय सेवा , सहयोग और पुण्य का काम है तसर्थ उस स्त्री के घर पर ही जाकर खुद तृप्त होकर सुखी होना गलत नहीं है । इसमें किसीको काई हानि भी नही है । उनकी अपनी पत्नी को आपत्ति भी नहीं है । इस लिए यह पाप भी नही है । हिंसा न करके सुख प्राप्त करना उचित कर्म है ,यह उनका तर्क है ।

(२) एक हिन्दू पुरोहित परिवार के चार पुत्र हैं जिनमे से एक पुत्र साकाहारी और तीनपुत्र मांसाहारी हैं । इस लिए पुरोहित पत्नी अलग अलग आचरण वाले भाइयों में अधिक समय तक मेल मिलाप न रहने की आशंका से अपने तीन शाकाहारी पुत्रों से कहा कि मेरे जीवन की अंतिम इच्छा है कि तुम भी मांस खाना शुरु करो , मांस खाते रहने से ही मेलमिलाप चिरकाल तक बना रह सकता है मेरे मन को तभी तसल्ली मिल सकती है और अंतिम अवस्था सुखमय हो सकती है ।

(३) एक संस्कारी परिवार का एक नवयुवक गैर वर्ण, सम्प्रदाय और अलग सामाजिक स्थिति की युवती से प्रम करता है और उससे विवाह करके सुख पाना चाहता है । यद्धपि इन दोनों के माता, पिता, परिवार कुटुंम्बी और समाज कोई भी इस सम्बन्ध को ठीक नहीं मानता है । माता पिता उस पुत्र की चाहना से घोर दुख, अपमान, झगडा,मुकदमेबाजी और मानसिक कष्ट पाने का सामाजिक परिवेश है और दोनो तरफ के इष्ट मित्र और सम्बन्धियों को चिन्ता और दुख प्राप्त होना निश्चित है ।

(४) एक आदमी को बुढौती मे एक मात्र संतान पुत्र प्राप्त हुआ । यह दम्पति अपनी मृत्यु कहीं जल्दी ही न हो जाय इस आशंका से नाबालक पुत्र की शादी कर देना चाहते हैं । वे लोग अपने जीवनकाल में पुत्र विवाह देखने का लोभ और दूसरी ओर विवाह से उसकी ससुराल की ओर से भी उसका संरक्षण होने की आशा से वे लोग जीवन के अंतिम समय में निश्चिंन्त होकर देह त्याग कर पाने से सुख पाने का विश्वास लिए बैठै हैं जबकि बाल विवाहको राज्य और सभ्य समाज गलत मानते है. ।

इन चार उदाहरणों में अलग अलग किसिम के कामों से सुख खोजने वाले चारों लोगों को भरपूर सुख प्राप्त होने की आशा है । लेकिन इन चारों कामों को समाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है । अब यदि परिवार और गाँव समाज की बात मानी जाय तो इन चारों लागों को अपार मानसिक दुःख मिलेगा । इस अवस्था में घर परिवार, माता, पिता और समाज एक तरफ है तो दूसरी तरफ कुछ लोगों का व्यक्तिगत सुख । किसके सुख को प्रार्थमिकता दी जाय ?

व्यक्तिवादी विचारक और समर्थक लोग व्यक्तिगत सुखको प्रार्थमिकता देते होंगे । जहाँ व्यक्ति का परिवेश , संस्कार और आवश्यकता सुख की आकांक्षा को मर्यादित करता है ऐसी धारणा है , वहाँ सुख प्राप्ति को जीवन का सौर्य, लक्ष्य और उपलब्धि माना जाता है ।

आशु : सुख की इस धारणा से तो व्यक्ति को जैसे भी हो अर्थात दूसरे को दुख देकर भी सुख प्राप्त करना चाहिए । यदि ऐसा है तो समाज में हिंसा और अराजकता होगी न?

रामजी : हाँ ठीक बात है । यह व्यक्तिवादी धारणा हिंसाको प्रश्रय देती है जिसका परिणाम अराजकता होता है । इस लिए मेरे विचार से उपर्युक्त प्रथम , द्वितिय और तृतिय सुख के आधार से उन लोगों के लिए भी नितान्त भ्रमपूर्ण है । इन लेागों द्वारा कही गई बातें और दी गई दलीलें सुख हैं ही नहीं । यह तो मन की दौड और इन्द्रिय का भ्रम है । विवेक खो जाने की अवस्था है । क्योंकि यह तथाकथित सुख स्थायी नहीं होते हैं । इससे घर परिवार, माता पिता वा संतान के प्रति गैरजिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार के कारण उन लोगों को दुख और मानसिक पीडा से और भी पापपूर्ण अवस्था का श्रृजन होता है । इस से तो और भी अपयश होता है । और अपयश तो इतना खराब होता है कि इस बारे में एक कहावत है **"बद अच्छा बदनाम बुरा "** । अर्थात अपनी खराबी को कोई और आदमी जान नहीं पाता है तो खराब होना उतना गलत नहीं होगा लेकिन किसीका काम अच्छा बुरा जो भी हो यदि समाज इसे खराब मानता है और बदनामी होती है तो वह काम सब से अधिक गलत और अभिशाप ही हो जाता है । बाद में अपनी आत्मा खुद अपने आपको धिक्कारती है । तब गलती सुधारने का कोई अवसर बाकी नहीं रह जाता है । क्षणिक सुख के कारण आजीवन मानसिक तनाव भोगना पडता है और जीवन नर्क बन जाता है और बाद मे पुस्ता दर पुस्ता इस सुख का दुष्परिणाम भोगने के लिए बाध्य होना पड सकता है ।

आशु : और चौथा व्यक्ति ? वह दम्पति ?

रामजी : उस बृद्ध दम्पति की इच्छा को आवश्यकता का सिद्धान्त समर्थन कर सकता है । लेकिन इसमें समय, स्थान , परिवार, परिस्थिति, परिवेश, सामाजिक

मान्यता और अनाथ बालबालिका के लिए राज्य के तरफ से होने वाले प्रबन्ध आदि तमाम बातों के व्यवहारिक और वस्तुगत अध्ययन से ही किसी निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है । लेकिन एक बात यह है कि उस दम्पति के केवल सुख की इच्छा मात्र से नाबालक का विवाह औचित्यपूर्ण नहीं हो सकता है । लेकिन यदि नाबालक का हित और सुरक्षा भी इसमें अनिवार्यतया जुट जाय तो इस विवाह को बल मिल जाता है ।

आदित्य : तो क्या आनन्दित होनेका कोई जीवन सूत्र सुनिश्चित नहीं है ?

रामजी : सुख की चर्चा होते होते यह आनन्द की बात कहाँ से आ गई ? यह दोनो तो अलग अलग चीजें हैं । सुख भौतिकवाद का अन्तिम लक्ष्य होता है इसका सम्बन्ध प्रायः भोगवादी संस्कृति से होता है । जैसे दिन का उल्टा रात , धनी का उल्टा गरीब, निरोगी का उल्टा रोगी, सुमार्ग का उल्टा कुमार्ग होता है उसी तरह सुख का उल्टा दुख होता है अर्थात एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था का आना स्वाभाविक है । तसर्थ सुख चिरस्थाई नहीं हो सकता है , लेकिन आनन्द का उल्टा कुछ है ही नहीं । अर्थात यह ऐसी अवस्था है जहाँ पहुँचने के बाद पूर्ण तृप्ति और शान्ति ही रहती है । भक्ति, ज्ञान और कर्म जिस किसी भी मार्ग से परमानन्द में पहुँचा जा सकता है । परमानन्द अर्थात ब्रह्म अर्थात भगवान । गीता, भागवत और वेद मे भी भगवान की प्राप्ति में ही परमानन्द होने की बात कही गइ है । लेकिन यह अवस्था सिद्धि की अवस्था होती है ,मोक्ष की अवस्था होती है । तसर्थ आनन्द अध्यात्मवाद में अन्तिम लक्ष्य होता है । ईश्वर को सद्चितआनन्द कहा जाता है और ईश्वर अंशी तथा आत्मा ईश्वर का अंश है । इस लिए आत्मा भी हर हमेशा आनन्द मे ही रहना चाहती है । लेकिन क्रोध, लोभ और मोह अर्थात माया इसको ढके रहती है और आदमी आनन्द प्राप्ति से वंचित हो जाता है ।

आदित्य : तो सुख प्राप्त होने वाला साधन और तरीका क्या है ?

रामजी : गौतम बुद्ध ने **उत्तम और सात्विक विचार को सुख प्राप्ति का साधन** बताया है । **इमर्शन** ने कहा है कि **चरित्र बिना की सफलता टिकाऊ नही होती है** । हम भी कहते हैं कि जीवन मे पवित्रता रहनी चाहिए । अर्थात नैतिकता से ज्यादा बडी अन्य कोई मानवीय इच्छा हो ही नहीं सकती है । तृष्णा और आशक्ति से मुक्ति न होने तक आत्मिक सुख प्राप्त नहीं हो सकता है । तभी तो मैने ऊपर कहे हुए तीन लोगों के चाहे हुए सुख को सुख की श्रेणी में नही रखा है । उन तीनो लोगों की इच्छा में न तो चरित्र बल है और न तो पवित्रता ही है । वहाँ तो केवल तृष्णा और आशक्ति भर है । खास समझने की बात यह है कि व्यक्ति द्वारा पवित्रता का अभ्यास और नैतिकता की साधना जिस मात्रा में की हुई होती है और नैतिक चेतना का स्तर जैसा विकसित हुआ होता है, वह व्यक्ति उसी अनुपात मे सुख की खोज

करता है और अपनी खोज अर्थात मन की तरंग को ओचित्यपूर्ण और न्याय संगत कहता है । लेकिन जब दूसरे की दृष्टि से उस सुख का मूल्यांकन होता है तो उसके साथ में यदि व्यक्तिगत तृष्णा लोभ,मोह और आशक्ति भी संलग्न है तो दूसरों की दृष्टि में इस सुख को दुष्कर्म अर्थात पाप कहा जाता है ।

रिती :हिंसा में भी कुछ लोग सुख ढूढते हैं तो ?

रामजी: औरों के शरीर मन, धन और मस्तिष्क में क्षति, दुख, कष्ट, मानसिक संताप पहुँचाने वाले सुख प्राप्त करना बहुत ही बडा पाप है । अर्थात हिंसा में आधारित सुख अधर्म है और बहुत बडे दुख का श्रोत होता है । दूसरे का मान,अपमान और सुख, दुख का विचार किए बिना अपनी मन की तरंग को सुख में परिणित करने की चाह एक प्रकार से सामाजिक अपराध ही होता है । इस लिए सुख की चाहना करनेवाले को सर्वप्रथम त्याग की साधना और नैतिक चरित्र के साथ साथ जीवन में पवित्रता और सत्कर्म को अंगीकार किया होना ही चाहिए । तब ही परिणाम सुखदायी हो सकता है । सरल भाषा में कहा जाय तो प्रतिफल की कामना न करते हुए अर्थात निःस्वार्थ भाव से अपने तन, मन धन से मनसा, वाचा, कर्मणा दूसरों की सेवा करना, दूसरों को सुखी बनाना और त्याग करना इन कर्मों से सच्चा और स्थाई सुख प्राप्त होता है । त्याग का प्रतिफल सुख है । औरों की सेवा करने के बाद प्राप्त होने वाले सुख से बडा अन्य कोई सुख हो ही नही सकता है । अपने पास की चीज वस्तु और इच्छापूर्ति मे आशक्ति न रखना सुख है ।

नेपाल के महाकवि लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा ने लिखा है :

खोज्छन् सबै सुख भनि सुख त्यो कहाँ छ ।

आफूलाई मिटाई अरुलाई दिनु जहाँ छ ।

सुख प्राप्ति के दो सूत्र और भी सुन लो :

१– अपना समाज और निवास जहाँ है,उस समाज के नियम, प्रचलन और मान्यताओं का उलंघन नहीं करना चाहिए ।

२ – बीते हुए दिनों को हमेशा याद रखना चाहिए और भविष्य के लिए सतर्कतापूर्ण योजना बनानी चाहिए । लेकिन इन दोनो कालों के प्रति बहुत चिन्तित न होकर वर्तमान मे भरपूर काम करना चाहिए । वर्तमान का भरपूर उपयोग करना चाहिए । **Persent time is the most importent time** इसको हमेशा याद रखना चाहिए ।

आशु : सेवा में ही जीवन बितानेवाले बडे बडे त्याग किए हुए संत प्रकृति के लोग भी तो दुखी और पीडित दिखते हैं । ऐसा भला क्यों है ?

रामजी : मृत्यु के बाद कारण शरीर के साथ में प्रारव्ध और अच्छे बुरे कर्म दूसरे जन्म में आ जाते हैं । यदि खराब कर्म का फल भोग का समय है और उस अवधि में आप अच्छे कर्म ही क्यों न कर रहे हों तो भी आप को भौतिक दुख तो प्राप्त होगा ही । लेकिन अच्छे काम में आप ने जो योगदान दिया है वह खराब तो हो ही नहीं सकता है । उससे दुख के समय में आत्मबल और आत्मिक सुख मिलता रहता है ।

कमलः अच्छा यह बताइए कि हम किसी की सेवा, सहयोग और भलाई क्यों करें,सत्य,निष्ठा ईमानदारी क्यों करें ? गुरु और धर्म पुस्तकों की बात क्यों माने ?

यज्ञ गुरु : हाँ यह ठीक है । विवेकानन्द साहित्य शंकराचार्य के अद्धैतवाद की व्याख्या करते हुए कहता है कि "ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या", अर्थात केवल ब्रह्म ही सत्य ह और संसार झुट्ठा है, असार है । मनुष्य सहित यह दृश्यमान संसार सब ईश्वरका ही विविध रुप ही तो है । सभी धर्म यह कहते हैं कि नैतिक तत्वों का सार दूसरों की हित साधना है । लेकिन दूसरों का हित क्यों करें, निस्वार्थ क्यों हों, देवता और शास्त्र की बात क्यों मानें ? इसका उत्तर कोई नही देता है । केवल अद्वैतवाद ही नैतिकता की व्याख्या कर सकता है ? अद्वैतवाद यह बताता है कि दूसरों की हिंसा करते हुए तुम अपनी ही हिंसा करते हो ? क्योंकि वे सब तुम्हारे ही स्वरुप हैं । तुम्हे मालूम हो या न हो , सब हाथों से तुम्ही कार्य कर रहे हो, सब पैरों से तुम ही चल रहे हो ? तुम ही राजा हो तुम ही भिखारी हो ? विद्वान, मूर्ख, निर्बल, सबल सब तुम्ही हो । चूँकि दूसरे को कष्ट पहुँचाना अपने को ही कष्ट पहुँचाना है इस लिए दूसरों को कष्ट नही देना चाहिए । इस तरह हमें नीति परायण क्यों होना चाहिए ? इसकी शिक्षा अद्वैतवाद देता है ।

आदित्य : धर्म और अध्यात्म के बीच में मुख्य फर्क क्या है गुरु ?

यज्ञ गुरु : धार्मिकता के आधार पर देखा जाय तो संसार मे तीन तरह के लोग हैं । एक तो वह जो अपने काम मे तल्लीन रहता है ,पाप से डरता है और पापमोचन और आत्मशुद्धि के लिए कुछ समय निकालकर दैनिक अथवा यदाकदा भजन, पूजन, आरती, देवदर्शन, दान, पुण्य, टीका ,चन्दन, माला कण्ठी आदि साधन और कर्मकाण्डीय कृत्य करता है ।

दूसरी तरह के वे लोग हैं जो भगवान और धर्म कहलाने वाले काम,नैतिकता, परोपकार और दूसरों के हित को प्रार्थमिकता आदि किसी चीज से कोई मतलब नहीं होता है । वह अपना भगवान खुद होता है , अर्थात अपना हित, अपना सुख और अपना संसार । जो **चारवाक का दर्शन यावत जीवेत सुखम् जीवेत , ऋणम् कृत्वा घृतम् पीवेत ।** में जीवन बिताता है । इसको पूर्णतया भोगवादी और भौतिकवादी संस्कृति या कोई कोई तो नास्तिक भी कह देते हैं ।

तीसरी तरह के वे लोग हैं जिसके लिए कर्मकाण्ड का कोई महत्व नहीं होता है ,मन्दिर, देवालय और मूर्ति आदि किसी प्रतीक चिन्ह की आवश्यकता नहीं होती है ,किसी पंथ या सम्प्रदाय विशेष को धर्म का रास्ता नहीं मानता है , वह अपने को लोक भाषा में धर्म कहे जाने वाले ऐसे घेरे और बन्धनों से बाहर कर चुका होता है । वह लोक परलोक , स्वर्ग , नर्क, भगवान, और देवी देवता नही भी मान सकता है , अर्थात हमारी नजर में वह पूर्ण नास्तिक हो सकता है,लेकिन यदि उसने दया, क्षमा, प्रेम, परोकार और सेवाको जीवन का अनिवार्य अंग बना रखा है, दूसरों के हित को अपना हित, दूसरों के सुख मे सुखी और दूसरों के दुख में दुखी होना जिसका स्वभाव ही हो, जिसकी आत्मा निष्पाप, निष्कलंक हो , तो वह व्यक्ति अध्यात्मिक है । वह नास्तिक और भौतिकवादी भले ही दिखाई देता हो लेकिन वह ईश्वर के सबसे अधिक नजदीक होता है । इस तरह अध्यात्म का अर्थ आचरण की पवित्रता और आत्मिक शुद्धता की उच्च अवस्था ओती है , यह तो मानव जीवन की सार्थकता की अवस्था होती है ।

आदित्य : इस तरह से तो धर्म कर्म और नैतिकता त्यागकर पापमय जीवन बितानेवाला कोई भी व्यक्ति अपने को आध्यात्मिक कह सकता है , तब तो समाज भ्रष्ट हो जाएगा और पतन में चला जाएगा ?

यज्ञ गुरु : यह खतरा तो जरुर है लेकिन अध्यात्मिक व्यक्ति की गुण और पवित्रता दूर से ही दिखाई पडती है,इसमें आडम्बर को तो स्थान ही नहीं है । व्यक्ति की दिनचर्या,जीवनशैली,आचरण और व्यवहार से ही अध्यात्म को प्रमाणित करता है । ऐसे व्यक्ति के व्यक्तित्व से सुगंध फैलती रहती है , सत्य और अहिंसा के प्रकाश में वह प्रकाशित हो रहा होता है ।

अध्याय - ४

जड चेतनका भेद

आशु: इस संसार में जड और चेतनका भेद किया जाता है । यह क्या है ?

यज्ञ गुरु : इस बातको अब मैं दूसरे तरीके से बताउँगा । यह विश्व ब्रह्माण्ड दो शक्ति की सत्ता से ढका हुआ है । एक तो दृश्यमान पदार्थ और वस्तुएँ अर्थात जड और दूसरा चेतन अर्थात चेतना । जड को प्रकृति अर्थात स्त्री और चेतन को पुरुष कहा जाता है । जड स्थूल है और चेतन सूक्ष्म है । जैसे कि हमारा शरीर । इसको जड कहें लेकिन इसमें चेतन तत्व भी है । वह सोंच विचार और निर्णय का काम करता है । इन दोनो के योग से हम जीवित हैं । चेतन तत्व जड से अलग होते ही जड सडने लगता है और शरीर मूलत: जिन तत्वें से बना है उसी तत्व में परिणित होने लगता है । अर्थात आत्मा बिना यह शरीर व्यर्थ वस्तु हो जाती है । इसी तरह आत्मा अदृश्य जगत में अपना अस्तित्व बनाए तो रख सकती है लेकिन शरीर के अभाव में वह कोई काम कर नहीं सकती है । इस लिए ये दोनो एक दूसरे के पूरक हैं । इसका तात्पर्य यह हुआ कि जड और चेतन के समन्वय से ही कोई सार्थक स्थिति बन सकती है । विश्व ब्रह्माण्ड भी ऐसा ही है । ब्रह्माण्ड में अवस्थित सम्पूर्ण जड पदार्थ– सूर्य, चन्द्रमा, तारा, ग्रह, नक्षत्र, वन, जंगल, पहाड, नदी, हवा, पानी, अग्नि, उर्जा, सर्दी, गर्मी और ताप सभी को एक विशाल चेतन तत्व ने न ढक रखा होता तो इन चीजों का न निर्माण हो सकता था और न तो इस रुप में रह ही सकते थे । ये तो अनन्त टुकडों में या यूँ कहो कि धूल कण होकर अनन्त आकाश में छाए हुए घूमते रहते । उस अवस्थाको तो शब्द में वर्णन ही नही किया जा सकता है । और न तो उसकी कल्पना ही की जा सकती है ।

हिन्दू दर्शन में जड जैसे दिखनेवाले गोबर में गौरी ,पत्थर में महादेव, पृथ्वी, आकाश, जल (वरुण), वायु, सूर्य,चन्द्र,ग्रह, नक्षत्र, तारा, रेंगनेवाले जीव जैसे सर्प,चिडिया मे गरुड और कौआ आदि,पशु मे कुत्ता और गाय बैल आदि की पूजा करके ये सभी ईश्वर के ही विविध रुप हैं , इनमें चेतना और शक्ति है, और इन सभी रुपोंकी अंतरनिर्भरता अर्थात **Ecosystem** को ही तो प्रमाणित करता है ।

आदित्य : प्रकृति अर्थात पदार्थ जगत स्वयं में कितना शक्तिशाली और उर्जावान है । क्या चेतन सत्ता के अभाव में वह कुछ काम कर सकता है ?

यज्ञगुरु : बिल्कुल नहीं कर सकता है । चेतन सत्ता के बिना उसका स्वरुप तक तो निर्माण नहीं हो सकता है तो भला वह काम क्या करेगा ? जड और चेतन की जोडी को ही तो विज्ञान और अध्यात्म कहा जाएगा । विज्ञान यद्धपि इस दृश्यमान

जगत को ही सत्य कहता है लेकिन इस पदार्थ की सत्ता को कोई अदृश्य इच्छा शक्ति इसका उत्पादन, संचालन और परिवर्तन करती रहती है । हम प्रत्येक पदार्थ में एक सुव्यवस्था देखते हैं । परमाणु, जीवाणु और विषाणु जैसे अदृश्य घटक भी किसी निश्चित नीति व्यवस्था का पालन कर रहे हैं । इस विशाल आकाश में असंख्य ग्रह, उपग्रह, बादल, चक्रंवात,आँधी,पानी पत्थर आदि बिना किसी आधार के अवस्थित हैं और आपस में इस तरह आबद्ध हैं कि इस आबद्धता और इनकी गतिविधियों को अकारण-निरुद्देश्य नहीं कहा जा सकता है । इस सब के पीछे एक चेतन सत्ता सुनियोजित काम कर रही है, इतना तो स्पष्ट देखा ही जा सकता है ।

कंचन : अच्छा तो यह चेतन सत्ता अर्थात विश्व आत्मा ही ईश्वर है ? क्यों गुरुदेव ?

यज्ञगुरु : परिणाम के लिए जल्दबाजी न करो । पहले पूरी बात समझ लो । विज्ञान और धर्मशास्त्र अपने अपने अध्ययन और अपनी अपनी शैली और भाषा में इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि सम्पूर्ण पदार्थका उत्पादन, इनकी क्रम बद्धता, तथा नियमित रुप परिवर्तन की प्रक्रिया में कोई चेतन सत्ता संलग्न है । हम जिसको जड अर्थात निर्जीव कह देते हैं, वह पदार्थ भी पूर्णतया निर्जीव नही हैं । पत्थर और धातु में भी एक तरह का जीवन होता है और इनका भी उत्थान पतन होता है । ये जड पदार्थ नितान्त निर्जीव और गतिहीन नहीं हैं । भारतीय वैज्ञानिक **Sir Jagadish chandra bose** ने सिद्ध कर दिया है कि **"even stons has also life."**

पदार्थ में विद्यमान **"गति या शक्ति"** एक सुनियोजित व्यवस्था क्रम से इस तरह आबद्ध है कि थोडी सी भी व्यवस्था बिगडने नहीं पाती है । प्रत्येक जड में आंशिक चेतना है । धातु में जंग लगती है, काठ में कुकुरमुत्ता उगता है, पृथ्वी में भूचाल आता है, वर्षात होती है,समुद्र का खारा पानी बाफ बनकर उड्ता है और पीने लायक मीठा स्वक्ष पानी बनकर पृथ्वी पर बरसता है, आधियाँ और चक्रवात आते हैं । समुद्री पानी के साथ उडकर आकाश में गया हुआ करोडों,अरबों टन नमक कहाँ चला जाता है ? यह सब अनायास हो पडता है क्या ? यह सब सूक्ष्म नियम और व्यवस्था से बँधे हुए हैं । ये जड पदार्थ नितान्त निर्जीव और गतिहीन नही हैं ।

उत्पादन, विकास और परिवर्तन, ये तीन क्रियाएँ प्रत्येक पदार्थ और प्राणी में निरन्तर चलती रहती हैं । अर्थात **गतिशीलता, निरन्तरता और परिवर्तनशीलता प्रकृतिका शास्वत नियम है ।** यह गतिविधि सजीव सत्ता से ही हो सकती है । वैज्ञानिक यद्धपि इस श्रृष्टिको परमाणु द्वारा निर्मित तो मानते हैं लेकिन और बातों में दुविधा में रहते हैं । लेकिन परमाणु का ढाँचा भी तो सौर मण्डल जैसा ही है । उसके अन्दर अनेकों एलेक्ट्रोन, प्रोटोन निरन्तर चक्कर लगा रहे हैं । उन तत्वों की गति, शक्ति, अनुशासन और व्यवस्था इतनी नियमित होती है कि पूर्ण निर्जीव पदार्थ यह

नियमितता कर ही नही सकता है । इसको वे क्यों अनदेखा कर देते हैं ? हाँ, **आइन्सटाइन** अपने अनुसन्धान में इस सुव्यवस्थाको देखकर आश्चर्य चकित हो गए थे । और वे जब उसका रहस्योद्रघाटन न कर सके तब अन्त में उन्होने स्वीकारा कि परमाणु के केन्द्र में **"कुछ"** है । इस स्वीकारोक्ति को परोक्ष रुप से ईश्वरीय सत्ता ही कह सकते हो । उन्होने कहा कि **God may be sophisticated, but He is not malicious अर्थात भगवान एक परिष्कृत व्यवस्था है उसे निर्दयी तो कदापि नही कहा जा सकता है ।**

आदित्य : विज्ञान पक्ष कहता है कि "जो प्रत्यक्ष दिखाई पडता है वह सत्य है, ईश्वर-धर्म और तत्व दर्शन के सिद्धान्त प्रत्यक्ष प्रमाण दे नही सकते हैं इसलिए सर्वमान्य नहीं हैं । ऐसे ही अध्यात्म कहता है कि "हमारे शास्त्र सत्य हैं, विज्ञान के अनुसन्धान में तो नित्य नई नई बातें दिखती रहती हैं । आज स्थापित सत्य, दूसरे ही दिन असत्य साबित हो जाता है, ऐसे परिवर्तनशील सिद्धान्तों को क्यों माना जाय ? इस प्रकार इन दोनो में व्यापक विरोध हैं । इसका समन्वय हो सकता है कि नही ? और समन्वय की आवश्यकता है भी कि नही ?

यज्ञ गुरु : पदार्थका प्रतिनिधित्व विज्ञान करता है और चेतनाका प्रतिनिधित्व अध्यात्म । **विज्ञान और अध्यात्म दोनोका लक्ष्य एक ही है "सत्य की खोज"** । विज्ञानको शक्तिका भण्डार माना जाता है लेकिन इसका विषय वस्तु जड दिखाई देनेवाला पदार्थ है, इस कारण विज्ञान में विवेक नही होता है । वह अनुसन्धान में जो देखता है वही कहता है और जो प्राप्त करता है उसीको उपयोग करता है । इस लिए विज्ञान कभी कभी मानवता के विनाशका कारण बन सकता है । **"शक्ति और सामर्थ्य यद्धपि अच्छी चीजें हैं लेकिन इनके साथ एक शर्त यह भी जुडी होती है कि इनकी उपलब्धियों का सदुपयोग किया जाय ।"** अर्थात इसकी उपलब्धियाँ खतरनाक भी हो सकती हैं । दर्शन के क्षेत्र में विज्ञान ने जब हस्तक्षेप किया तभी तो "नास्तिकता" का वातावरण बना है । भौतिकवादीयों ने जब "प्राणीको पदार्थ" मान लिया तब उन्होने प्राणी के ऊपर भी जड पदार्थ सम्बन्धी नियम लागू कर दिये । इस कारण इस संसार में नर्क का वातावरण बन गया है ।

यदि इस श्रृष्टि और संसारको जीवित रखना है और मानव जातिको सुखी और समुन्नत बनाना है तो उसको सुसंस्कृत बनाना होगा और सुसंस्कृत और सभ्य बनाने के लिए आदमी के दृष्टिकोण अर्थात Stand point में उत्कृष्ट आदर्शवादिता का समावेश कर सकने वाले तत्व दर्शनको अपनाने की बाध्यता है ।

मनुष्य के आदर्शवादी व्यवहार कुशलता को चेतनाकी उत्कृष्टता कह सकते हैं । गुण, कर्म, और स्वभावकी उत्कृष्टताको ही दार्शनिक भाषा में अध्यात्म कहा जाता है । अर्थात अपनी आत्मा की परिष्कार की साधनाको अध्यात्म कहा जाता है । चेतन

पक्षको सुनियोजित-सुसंस्कृत बनानेवाली विद्याको अध्यात्म कहा जाता है । **ईश्वर के आदर्शको जीवन में उतार कर वैज्ञानिक उपलब्धियोंका भोग किया जाय तो यह जगत बना रहेगा लेकिन यदि विज्ञान ने भौतिकवादी मानसिकताका वितरण किया तो जगत ध्वस्त हो जाएगा ।** विज्ञान आदमीके सुख और उन्नतिका अद्‌भुत श्रोत है । अध्यात्मको विज्ञानकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । इसलिए विज्ञान और अध्यात्मको एक रथ के दो पहियों की तरह साथ साथ चलना चाहिए । पश्चिमी विज्ञानको पूर्वीया अध्यात्मके सिद्धान्तों से और पूर्वीया दर्शनको पश्चिमी विज्ञान के क्षेत्र से निकटता रखकर सुख शान्तिकी खोज करनी चाहिए ।

इतना कहकर यज्ञ गुरु ने कहा कि अब मैं तो बूढा आदमी बोलते बोलते थक गया हूँ । थोडी देर आराम करुँगा । इतना कहकर कोने में दीवल की टेक लगाकर आँख मूँद ली । तब एक श्याम नामके आदमी प्रश्नोत्तरी में आगे बढे ।

दीपेन्द्र : जीवन में ज्ञानका क्या महत्व है ?

श्याम : भगवान विष्णु पालनकर्ता हैं इसलिए उन्होने जीव को कष्ट मुक्त रखने के लिए तप, दान, धर्म सत्य और तीर्थ सेवन जैसे साधन बनाए हैं । लेकिन इन सब से दुखोंका पूर्ण नाश नही होता है । केवल मोक्ष से ही परम सुख प्राप्त हो सकता है । और मोक्ष प्राप्तीका एक सशक्त साधन है "ज्ञान"। ज्ञान का अर्थ है प्रकाश इसीलिए ब्रह्मा ने ज्ञान का प्रकाश फैलाने के लिए, वशिष्ठ, नारद, शौनक और अन्य ऋषि महर्षियों को भूलोक में भेजा था ।

मान लो भयानक काली रात्रि है और उस अँधेरे को मिटाने के लिए एक छोटा सा दीपक जल रहा है जिससे कुछ स्थूल और बडे आकार की वस्तुएँ दिखाई पड रही हैं । लेकिन यदि वहाँ बहुत बडी शक्ति का बिजली का बल्व लगा दिया जाय तो अंधकार पूरी तरह से हट जाएगा और वहाँ की छोटी से छोटी चीजवस्तु,दिख जाएगी । आप सही रास्ते पर चल लेंगे ,आप का रास्ता सुगम हो जाएगा,आप डगमगाएँगे नहीं और अँधेरे में रखी हुई वस्तुओं से टकराकर गिरने से बच जाएँगे । ज्ञान ऐसा ही करता है । उससे जीवन का रास्ता प्रकाशवान हो जाता है ।

कमल: कहते हैं कि ज्ञानी के कोई शत्रु नही होता है ? यह कैसे और क्यों ?

रामजी: हाँ यह बात सही है लेकिन यह बात वास्तविक ज्ञानी के लिए है । केवल पढेलिखे लेकिन साम्प्रदायिक आदमी के लिए नही है । सामाजिक या आध्यात्मिक किसी भी जीवन प्रणाली में अज्ञान ही सब प्रकार के दुखों का कारण है । अज्ञान से ही हम परस्पर घृणा करते हैं,अज्ञान के कारण ही हम एक दूसरे से अपरिचित हैं,

इस लिए आपस में प्यार नही करते हैं । जब हम एक दूसरेको जान लेते हैं तभी प्यार का उदय होता है । प्रेम का उदय निश्चित है । क्योंकि हम सब एक ही हैं ।

नितिनः धर्म,ज्ञान, व्यवसाय,जाति आदि विभिन्न आधार पर ऊँच,नीच और छोटे बडे का भेद मिटाने का सरल तरीका क्या है ?

रामजीः यदि विवेकानन्द की बात मानें तो धर्म को सशक्त बनाने के लिए आध्यात्मिकता के वे रत्न जो मठ और मठाधीशों के कब्जे में हैं,उनको बाहर लाकर सर्वसुलभ बनाना होगा । इस रास्ते की सबसे बडी कठिनाई हमारी गौरवशाली भाषा संस्कृत है इस लिए जहाँ तक सम्भव हो प्रत्येक देशवासीको संस्कृत का ज्ञान कराया जाय और विद्वान बढाए जाएं । लेकिन इस भाषा की किलिष्टता को ध्यान में रखते हुए संस्कृत भाषा में छिपे हुए रत्नों को बोलचाल की भाषा में भी बाँटा जाय । लेकिन संस्कृत शिक्षा जारी रखनी पडेगी क्योंकि संस्कृत शव्दों की ध्वनि मात्र से ही हमें एक प्रकार का गौरव, शक्ति और बल प्राप्त हो जाता है । चैतन्य, कबीर और रामानुज ने लोकभाषा में और बुद्ध ने पाली भाषा में शिक्षा देकर निम्न वर्ग को काफी ऊपर उठाने में सफलता तो पाई लेकिन इन लोगों ने संस्कृत की अवहेलना की, परिणाम स्वरुप ज्ञान का विस्तार तो हुआ लेकिन उसके साथ साथ साथ प्रतिष्ठा नही बनीं, संस्कार नही बना । युग के आघात को केवल संस्कृत ही सह सकती है, मात्र ज्ञान राशि नहीं । जनता को उसकी बोलचाल की भाषा में शिक्षा दो, भाव दो, परन्तु साथ ही उसे संस्कृत का बोध दो । इससे उनकी उन्नति स्थायी होगी।

पिछडी जाति के लोगों के उन्नति के लिए एक मात्र उपाय संस्कृत पढना है । संस्कृत भाषा का ज्ञान होने से कोई भी तुम्हारे विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं करेगा यही एक मात्र रहस्य है । उच्च वर्णों को नीचे उतारकर समानता स्थापित नहीं हो सकती है । नीची जातियों को उँचे उठाकर उँची जातियों के बराबर पहुचाना होगा । लड झगड कर और उच्च जातियों का विरोध करके किसीको उच्च नही बना सकते हो, जो उच्च हैं वे संस्कृत के बल पर उच्च हुए हैं संस्कृत उच्च वर्णों का बल और गौरव है वही संस्कार और शिक्षा आर्जन करो तो तुम भी उच्च स्थान पर पहुँच जाओगे । भारत के सारे मनुष्य आर्यों के सिवा और कोई नही है । सभी जातियों मे समता लाने के लिए संस्कृत शिक्षा अनिवार्य तत्व है ।

दीपेन्द्र : तो क्या ज्ञान से सभी कार्य सिद्ध हो सकते हैं ?

श्याम : नहीं । ज्ञान और सदाचार अर्थात उद्योग और सत्कर्मका जब तक निरन्तर अभ्यास नहीं किया जाता है तब तक किसी भी चीज की सिद्धि नहीं हो सकती है । सद्पुरुष के सदाचार से ज्ञान का और ज्ञान से सद्पुरुष बनाने वाले

आचरण की बृद्धि होती है । जीवन में सफलता के लिए ज्ञान, कर्म और सदाचार इन सभीका पर्याप्त मात्रा में प्रयोग करने की कला जाननी चाहिए ।

प्रियंका : देवता भी मनुष्य योनि में जन्म लेने को उत्सुक रहते हैं । क्या यह सही है ?

श्याम : संसार में आदमीके अलावा बाकी जितने भी प्राणी हैं वह सभी कोई एक तो कोई दो, कोई तीन कोई चार अधिकतम चार कोषीय तक ही होते हैं । अर्थात कोई जीव अन्नमय कोष, कोई मनमय कोष, कोई प्राणमय कोष और कोई आनन्दमय कोष मे होते हैं । इसलिए ये सभी जीव भोग योनि में हैं । लेकिन आदमी ही केवल एक ऐसा प्राणी है जो पाँच कोषीय होता है अर्थात उसमें "विज्ञानमय" कोष भी होता है । इस कारण वह कर्म योनि में होता है और वह कर्म भी कर सकता है । वह अपने पूर्व जन्म के गल्तियों का सुधार करते हुए, निरन्तर सत्कर्म करता रहे तो हमेशा आनन्दित रह सकता है । लेकिन देवताओंके पास स्थूल शरीर नहीं होता है इसलिए कर्मयोनि ही नहीं होती है । यही कारण है कि वे मानव जीवनको श्रेष्ठ जीवन मानते हैं ।

मेघ वर्षा चरम सीमा पर थी । उस छोटे से मन्दिर में प्राणरक्षा की आशा से बैठे हुए लोग कोई हा राम, हा राम कर रहा था, कोई राधे राधे का भजन तो कोई ॐ नमः शिवाय पुकार रहा था । लेकिन इस भयानक त्रासदी में भी ज्ञान, विज्ञान की बातों ने सभीको कुछ भुलावे में डाल रखा था । यज्ञ गुरु की थकान के बाद एक लडकी ने फिर बात आगे बढानी चाही -

गुंजन : विज्ञान ने तो अन्तिम तह तक अनुसंधान करने के वाद अब तो यह स्वीकार कर लिया है कि भगवान नहीं है । तब भला ईश्वरीय सत्ताको कैसे प्रमाणित किया जा सकता है । अध्यात्म के पास विज्ञान जैसे अनुसन्धानात्मक उपकरण हैं क्या ?

रामजी : विज्ञान ने "ईश्वर है ही नहीं" ऐसा तो नहीं कहा है । उसकी खोजका अन्त तो नहीं हुआ है न ? उसने तो आज की तारीख तक के अनुसन्धान से बस केवल इतना ही तो कहा है कि ईश्वर नहीं मिला है, । कल के दिन में क्या होगा ? यह तो वह नहीं जानता है । क्योंकि खोज तो जगत के अन्त तक अर्थात पृथ्वी पर आदमी के रहने तक जारी रहनेवाली चीज है । खोजने की वस्तु अगर मिल जाय तो चलो खोज खतम हुई ऐसा कह सकते हैं लेकिन जब तक खोज जारी रहती है या खोज की सम्भावना ही शेष रहती है और खोज की जानेवाली चीज नहीं मिली होती है तो हम खोज के समाप्ती की घोषणा कैसे कर सकते हैं ? तसर्थ विज्ञान आज की तारीख पर यदि यह कहता हैं कि ईश्वर है ही नही तो वह मूर्ख है । ऐसी मूर्खता वह करेगा भी नही । करनी चाहिए भी नही । नई नई खोजें और उपलब्धियों

की सम्भावना तो हमेशा बनी ही रहेगी । सभी जिज्ञासाओं की खोजका अंत तो मानव देख ही नहीं पाएगा । क्योंकि मानव जब तक पृथ्वी पर रहेगा, रहस्यों के खोज का अंत नही होगा ।

अब ईश्वरीय सत्ता के प्रमाणीकरण और अध्यात्म में आधुनिक खोज के ठोस उपकरण की बात । आदमी जिस स्तर में है उसी स्तर और इन्द्रिय की सीमा में ही कोई चीज देख सकता है, जान सकता है । आदमी इन्द्रिय की सहायता से देख और छू सकनेवाली वस्तुओं को ही देख सकता है । लेकिन मन और बुद्धि से भी सूक्ष्म तत्वों तथा परमात्म तत्वों का अनुभव तो केवल आत्मा के स्तर से ही हो सकता है अर्थात इन्द्रिय, जिसमें आँखे भी हैं वे स्वयं स्थूल हैं इसलिए यह स्थूल जगत के अलावा सूक्ष्म जगत में प्रवेश कर ही नही सकती हैं । भगवद् गीता में अर्जुन ने परमात्मा के विराट रुपका दर्शन करके उन्होने ईश्वरको आदि, मध्य और अन्त रहित बताया है । कौशल्या, काक भुसुण्डी और यशोदा माता का अनुभव भी ऐसा ही है । ऐसी अनुभूति तब ही संभव होती है जब जीवन की सभी क्षुद्रताएँ विलीन हो जाती हैं और अंकार की छाया भी शेष नहीं रहती है । दिव्य दृष्टि से ही ईश्वरका दर्शन हो सकता है । उदाहरण के लिए हमारी आँख मे यदि छोटा सा तिनका भी पड जाता है तो सामने खडा हुआ विशाल पहाड दिखाई नही देता है । वैसे ही आत्मा में भी छोटी सी छोटी क्षुद्रता नहीं होनी चाहिए । आत्मा सांसारिक मोह माया से ऊपर उठ गई होनी चाहिए । यह आत्मपरिष्कार ईश्वर प्राप्ती का अचूक साधन है । इसी के लिए तो उपासना, साधना और आराधना जैसे सूत्रों का अवलम्बन किया जाता है । और आत्माको दर्पणकी तरह स्वक्ष रखा जाता है । ईश्वर स्वक्ष दर्पण मे ही दिखाई पड सकता है ।

पदार्थ वैज्ञानिक जिस तरह से भौतिक प्रयोगशाला में बैठकर प्रयोग करते हैं उसी तरह हमारे ऋषियों ने अपने मन और मस्तिष्क को प्रयोगशाला बनाकर उन तथ्यों और सिद्धान्तोंको खोज निकाला जिसका प्रयोग और पालन करके सामान्य प्राणी भी अतुलनीय शक्ति सम्पदा और सामर्थ्य प्राप्त कर सकता है । और सुसुप्त आन्तरिक शक्तियोंको उजागर करके देव मानव बन सकता है । चेतना की उत्कृष्टता आदमीको ब्रह्म से साक्षात्कार करा सकती है । नंगी आँख और हमारी इन्द्रियों के द्वारा हम परमाणु, शुक्राणु, जीवाणु, विषाणु और हवा को भी तो नही देख पाते हैं, तो भी इनका अस्तित्व तो है ही । ईश्वरीय सत्ता भी ऐसे ही है । उसको उसी स्तरकी आँखों से अनुभव किया जा सकता है । भौतिकवाद कहता है कि पहले दिखाओ तब मानेंगें और अध्यात्मवाद कहता है कि पहले मानो फिर दिखाते हैं । यह तो दोनो के बीच में बहुत बडा फर्क हुआ । इसलिए मै तो कहता हूँ कि कुछ जानकर चलो कुछ मानकर चलो ।

आदित्य : हम आस्तिक लोग यह मानते हैं कि परमात्म सत्ता है लेकिन यदि कोई नास्तिक यह कहे कि परमात्म सत्ता है तो दिखाओ ? ठोस प्रमाण दो । तब वैसा ठोस प्रमाण देनेकी कितनी संभावनाएँ हमारे पास हैं ?

किशोर : इस बारे में तो मैं पहले ही बता चुका हूँ । यज्ञ गुरु और रामजी ने भी व्याख्या कर दी है । अच्छा चलो ठीक है, इसको फिर से समझ लेना ठीक रहेगा । सर्वप्रथम तो मैं यह कहूँगा कि किसी भी बात के जिज्ञासु को सबसे पहले अपने मन मस्तिष्क में संकलित करके रखी हुई जानकारी और आग्रह को त्याग्ना आवश्यक है । यदि नास्तिक ने पहले ही "ईश्वर है ही नही" ऐसी धारणा बना रखी है और वह कहता है कि "ईश्वर दिखाओ" तो तुम उसको चाहे जितना प्रमाण दिखओगे, वह मानेगा नहीं । इसलिए उसको पहले तो अपने मन मस्तिष्कको खाली करना ही पडेगा । उदाहरण के लिए आप जिस बरतन में दूध लेते हैं उसमें पहले से ही कोई दूसरी चीज भरी है तो यदि उसी में दूध डालो तो दूध तो बाहर गिर जाएगा ऐसे ही जो अपने को ज्ञानी समझता है वह दूसरे की बताई हुई बातको स्वीकार नही कर सकता है । दूसरी बात हम लोग कहते हैं कि साफ दिल से ईश्वर को ढूँढोगे तो वह जरुर मिलेगा । सभी यही कहते हैं । चोर बदमाश भी साफ और शुद्ध हृदय की बात करता है । लेकिन वास्तविक बात तो यह है कि आदमी कहीं न कहीं निजी मान्यता, निजी स्वार्थ और मानसिक दुविधा के अवस्था में जी रहा है फिर भी अपने को तो सभी लोग अच्छा और शुद्ध आत्मा ही कहते हैं । यह आदमीका स्वभाव है । यही तो माया जाल है । इस संसार में ज्ञातव्य इतिहास से आजतक परमतत्व से साक्षात्कार करने की क्षमता भला कितने लोगों ने आर्जित की होगी ?

तुम जिस बरतन में दूध लेते हो, थोडी देर के लिए यह मान लो कि वह बिल्कुल खाली है लेकिन अन्दर गन्दगी है या उसमे थोडा सा गोबर पडा है जो उस गन्दे बरतन में दूध भरने से क्या होगा ? कौन खाएगा वह दूध ? हम सांसारिक लोगों की आत्मा भी ऐसी ही है । हम इसको चाहे जितना साफ सुथरी रखें लेकिन यदि आत्मा में छोटा सा भी कुतत्व कहीं चिपका रह गया है तो परम तत्वके दर्शन नही हो पाएगा । तसर्थ हम लोग न तो ईश्वरके बारे में सभी कुछ जानते हैं और न तो किसीको बता ही सकते हैं । ईश्वर अपने ही खोज का विषय है । हम कोई भी किसी को भी ईश्वरीय सत्ताका प्रमाण नही दे सकते हैं । तुलसीकृत रामायण में लिखा है -

सोइ जानइ जेहु देहु जनाई ।

जानत तुमहि तुमहि होइ जाई ॥

राम चरित मानस/अयोध्याकाण्ड/सोठ ०१२६/०३

(हे भगवान जिसके ऊपर आपकी कृपा दृष्टि होती है वही आपको जान सकता है और आपको जो जान जायगा वह तो स्वयं आपका ही रुप हो जाएगा)

ईश्वर के बारे में एक ही शब्द में कोई अपनी ठोस अभिव्यक्ति तो दे ही नहीं सकता है, क्योंकि ईश्वरके बारे में जानकारी पाने के लिए या तो ईश्वर से अधिक शक्तिशाली और अधिक ज्ञाता होना पडा या तो ईश्वरका समकक्षी होना पडा लेकिन संसार में ईश्वर से बडा या ईश्वरका समकक्षी कोई है ही नहीं । हो भी नही सकता है ।

श्याम : इसी बात में मैं थोडा से यह भी जोडना चाहता हूँ कि कोई यदि भगवान दिखाने की बात उठाता भी है तो हम क्यों भगवान दिखाने दौड पडें । यदि उसे आवश्यकता है तो वह खुद ढूँढे । जीव में विद्यमान प्राणतत्व भी तो नहीं दिखता है । लेकिन इसका अस्तित्व तो है न ? बिजली के तार में प्रवाहित हो रहा करेन्ट कौन देखता है ? लेकिन इसके प्रवाह और शक्ति से कौन इनकार कर सकता है ? ईश्वर ठीक इसी प्रकार एक ध्वनि अथवा कम्पन के रुप में पूरे विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त है । ऐसी कोई जगह है ही नहीं जहाँ ईश्वर न हो ? हम उसका अनुभव भर कर सकते हैं लेकिन पदार्थ की तरह छू नहीं सकते हैं ।

रामजी : हाँ इसमें मैं भी थोडी सी अपनी बात यह जोडना चाहता हूँ कि तुलसीकृत रामायण के पहले अध्याय के दूसरे श्लोक मे ही कहा गया है :-

"भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रुपिणौ ॥"

अर्थात मैं उन माता पार्वती और शिव की वन्दना करता हूँ जो श्रद्धा और विश्वास के प्रतिरुप हैं । अर्थात श्रद्धा और समर्पण से हम प्रकृति में घुल जाते हैं । पानी की छोटी सी बूँद जब समुद्र में मिल जाती है तो वह भी समुद्र बन जाती है । इसी असीम श्रद्धाके द्वारा हम प्रकृति के गर्भ में पहुँच सकते हैं और अटूट विश्वास के आधार में शिव तत्वका अंग बन सकते हैं । इसीको अणु से विभु बनना कहा गया है । इसीलिए श्रद्धा और विश्वासका युग्म शिव पार्वती के रुप में हमारे सामने उपस्थित हो जाता है । इसको तो यह भी कहा जा सकता है कि तब हम ही शिव तत्व के रुप में परिवर्तित हो जाते हैं । उस समय यह संसार गायब हो जाता है और केवल "शिव" शेष रह जाता है । अर्थात जीव "ब्रह्म" में विलीन हो जाता है । इसीलिए तो तुलसी दास ने "जिसने आपको जाना, वह आप ही हो गया" कहा है ।

आशु : आप कहते है कि आत्मा परमात्मा मे विलीन हो जाता है लेकिन किन्ही दो चीजों को एक में विलीन होने के लिए तो दोनो में तात्विक एकता होना पडा एक ही जाति का होना पडा । क्या यह दोनो एक ही जाति के हैं ?

रामजी : हाँ यह दोनो एक ही हैं । आत्माको जानना और ईश्वरको जानना एक ही तो है । ईश्वर महासमुद्र और आत्मा एक बूँद जैसा ही है ।

अपाङ प्राङेत स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्योना सयोनिः ।

ता शश्वन्ता विशूचीना वियन्तान्यन्यं चिक्युर्न नि चिकुरन्यम ॥

ऋग्वेद १/१६४/१७५३/३८

अथर्ववेद ९/१५/२६२४/१६

अर्थात जीव आत्मा अमर है और शरीर प्रत्यक्ष नाशवान । सम्पूर्ण शारीरिक क्रियाओं का अधिष्ठाता आत्मा हैं । क्योंकि जब तक शरीर में प्राण रहता है तब तक यह क्रियाशील रहता है । इस आत्मा के सम्बन्ध में तो बडे से बडा पंडित और मेधावी व्यक्ति भी नही जान सकता है । इसको जानना ही तो मानव जीवनका प्रमुख लक्ष्य है ।

इससे यह बात साबित हो जाती है कि यदि वेद माया द्वारा आच्छादित आदमीको "भगवानको तलाशो, और उसे समझो" यह कहे तो आदमी उतनी हिम्मत हीं नही दिखा सकता है । इसलिए क्योंकि आत्मा ईश्वरका अंश ही है, और यह आदमी के पास भी है, इसलिए आदमीको इसकी जाँच करना आसान होगा तसर्थ "इसी का साक्षात्कार करो न तो ।" कहा गया है ।

आशु : जीव आत्मा अमर है तो यह जन्म और मृत्यु क्या है ?

रामजी : मरने और जन्म लेनेवाला यह शरीर है आत्मा नहीं । **श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय २ के श्लोक संख्या २२** में इस बारे में उल्लेख है । इसी तरह इस आत्मा को कोई भी मार नही सकता है इसका भी प्रमाण देखें :

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।

नचैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता २।२३

(इस आत्मा को शस्त्र नहीं काट सकता है और आग जला नहीं सकती है , पानी गला नही सकता, और हवा सुखा नही सकती है ।)

आशु : शास्त्र मे ब्रह्मा को श्रृष्टिकर्ता, विष्णुको पालनकर्ता और शिव को संहारकर्ता कहा गया है । लेकिन शिव का अर्थ तो कल्याण होता है और शिव वास्तव मे कल्याणकारी देवता हैं भी , तो फिर इनको संहारकर्ता क्यों कहा गया है ।

रामजी :शिव कल्याणकारी देवता हैं यह बात तो ठीक है । ये थोडी सी पूजा स्तुति से प्रशन्न हो जाते हैं इसलिए इनको आशुतोष और उपासनाकर्ता की माँग

अनुसार वरदान दे देने की उदारता के कारण इनको अवढरदानी कहा जाता है । सभी का समान कल्याण करते हैं इस लिए **"सम कल्याणं करोति इति शंकरः" कहा गया है ।**

लेकिन ब्रह्मा रजोगुणी, विष्णु सतोगुणी और शिव को तमोगुणी कहते हैं । इस का कारण यह है कि इस श्रृष्टि के लिए तीनों गुण अपरिहार्य आवश्यक होते हैं । जब तक श्रृष्टि का संहार नही होता है तब तक नवश्रृजन नहीं हो सकता है । इस कारण श्रृष्टि की भी आयु निश्चित होती है और आयु पूरी होने के बाद में संहार के लिए कोई एक शक्ति तो होनी ही चाहिए । इस लिए , ब्रह्मा क्योंकि श्रृष्टिकर्ता हैं तसर्थ वे माता के रुप में और विष्णु पालनकर्ता के रुप अर्थात पिता हैं , इसलिए माता पिता को श्रृष्टि का विनाशक होना उचित नही है फिर तो भगवान शिव, क्योंकि वे आदि गुरु हैं और गुरुको शिष्य के निर्माण और पुनर्निमाण में माली ,मूर्तिकार और कुम्हार के जैसा काटपीट करना, माडना, मीजना अर्थात स्नेह और शक्ति दोनों का प्रयोग करते बनता है, इस लिए श्रृष्टि का अंत समय आने पर वे अपने को महारुद्र, कालरुद्र के रुप में प्रकट करके श्रृष्टि को अपने आप में लीन कर लेते हैं और यह श्रृष्टि समाप्त हो जाती है । तब ब्रह्मा पुनः इसकी रचना करते हैं । यह चक्र निरंतर चलता रहता है । इस प्रकार शिव रुद्र रुप में संहारकर्ता हैं ।

दूसरी बात , सतीमाता के यज्ञ कुण्ड में आत्म दाह करने के बाद भगवान शिव ने क्रोधित होकर अपनी जटा से वीरभद्र को प्रकट किया था और राजा दक्ष प्रजापति को सैन्य बल सहित विध्वंश कर दिया था और रावण कुम्भकरण जैसे अजेय राक्षस और विशाल सेना को राम ने शिव की पूजा उपासना करके उनके ही आर्शीर्वाद से परास्त किया था तथा महाभारत काल में शिवजी हनुमान के रुप में अर्जुन के झण्डे मे विराजमान होकर कौरवों को समाप्त करने के काम मे सहयोग किया था इस लिए उन्हे संहारकर्ता कहते हैं ।

कंचन :हिन्दुओं मे. भगवान को खुश करने के लिए बलि देते हैं लेकिन पुरुष देवता को नहीं । भगवान के स्त्री स्वरुप देवी के नाम पर बलि दी जाती है । इसका कारण क्या है ?

रामजी : जब मनुष्य के आदि पुर्खे जंगली अवस्था में थे, पशु तुल्य जीवन था, अन्नाहार का ज्ञान और विकास नही हुआ था , कंदमूल और जंगली फलफूल हर समय और हर जगह उपलव्ध नही था, उस अंधकार युग में आदमी को पेट भरने और क्षुधा शान्त करने के लिए खाद्य अखाद्य जो भी मिले वही खाने की बाध्यता से आदि मानव मांस भक्षी हो गया । इस लिए आदि काल के प्रारम्भिक समाज की रीति नीति बनानेवाले **भगवान स्वयम्भू मनु ने लिखा है "जीवो जीवस्य जीवनम्(भोजनम्) अर्थात एक जीव दूसरे जीव का आहार है ।** इस मानव समाज ने, क्योंकि भगवान को भी अपने जैसा ही, मानव रुप में ही देखता था , इस लिए मांसभक्षी मानव ने भगवान को भी मांस अर्पित करना शुरु कर दिया । इस क्रम में कहीं कहीं

भैरव बाबा अर्थात पुरुष शक्ति को भी यद्धपि बलि देते है. लेकिन यथार्थ में देबी को ही बलि देने का प्रचलन है ।

भगवान के स्त्री स्वरुप को ही बलि क्यों ? तो इसके उत्तर में , आदि मानव प्रकृति पूजक था और प्रकृति को स्त्री रुप में पूजता भी था , वह स्वय जो खाता था श्रद्धावश वही चीज प्रकृति को भी चढाता था जिसमें मांस की ही प्रधानता होती थी आज भी प्रकृति को स्त्री रुप में ही देखा जाता है शक्ति की अधिष्ठात्री (देवी) अर्थात भगवान का स्त्री रुप ही माना जाता है ।

दूसरी बात यह है कि , समाज निर्माण के कम मे सर्वप्रथम मातृसत्तात्मक परिवार और समाज बना हुआ होगा । परिणामस्वरुप भगवान का नारीरुप अर्थात देवी को ही प्रमुख माना गया और कालान्तर में शासक और उसके सहयोगियों ने धनबल, जनबल, बाहुबल,बुद्धिबल, मनोबल और यशोबल की अभिबृद्धि तथा युद्ध में विजय और शत्रु संहार के लिए प्रस्थान करते समय उत्साह अैर उमंग में मांस मदिरा खाकर मदमस्त होकर ढोल नगाडा बजाते हुए देवी पूजन करके बलि चढाकर खून का लाल टीका लगाकर हल्ला मचाते हुए प्रस्थान करने वाले शाक्त समुदाय से इस प्रथा की स्थापना में बल मिला है ।

तीसरी बात , हम जब अपने से किसी बडे आदमी के घर जाते हैं तो भेंट लेकर जाते हैं, यह चलन है । इसमें माननीय व्यक्ति के लिए तो भेंट ले ही जाते हैं साथ ही उसके निकट के सहयोगी, द्वारपाल, निजी सेवक और भण्डारी को भी भेंट देने का चलन है । इस लिए आदि मानव जब देवी दर्शन के लिए मठ मन्दिर में जाता था तो देवी के लिए नारियल, कद्दू,पेठा,ननुई,मिठाई, खीर, पूडी आदि सात्विक खाद्य पदार्थ और देवी के वाहन बाघ को भी खुश न करने की अवस्था में द्वार में प्रवेश करना कठिन होगा यह सोंच कर बाघ को भी पशु पक्षी की भेंट देना और बलि चढाने की परम्परा बन गई और कालान्तर मे मांस खाना अधिक पसंद करने वाले लोग देवी का आहार जीव जन्तु है ऐसा अर्थ करते हुए सात्विक पदार्थ भढाना कम करते गए और अज्ञानतावश देवी को मांस मदिरा चढाने की परम्परा स्थापित हो गई है ।

देवी के आहार मांस मदिरा जैसे पदार्थ हैं ही नहीं और न तो हो ही सकते हैं । भगवान अपने संतान को प्रेम, ज्ञान और शक्ति का वितरण कर रहे हैं । फिर नारी स्वभाव तो और भी कोमल, और ममतामयी होता है । इस स्वरुप मे तो कोई भी हिंसक कार्य स्वीकार्य हो ही नहीं सकता है । भोग और पशु बलि की प्रथा कई कारणो. और अवस्थाओं तथा देवी के वाहन के लिए चली है । **मार्कण्डेय पुराण** में इस बारे मे काफी कुछ उल्लेख हुआ है ।

आदि मानव के आवशयकता के अनुसार मनु ने भी मांस भक्षण की मान्यता दी थी कालान्तर में आदमी ने अपने हित के लिए अंधश्रद्धा, अंधविश्वास और समर्पण की भावना में बहकर बलि प्रथा की शुरुवात की लेकिन मनुष्य को जब कृषि का

ज्ञान हुआ, खाद्य पदार्थ की प्रचूरता हुई और मनुष्य सभ्य होने लगा तब परिवर्तित परिस्थिति में खाद्य और अखाद्य का विचार होने लगा । प्रकृति ने कुत्ता, बिल्ली, शेर और स्याल जैसे मांसाहारी जानवरों की तरह मनुष्य को नही रचा है । मनुष्य को कुछ दूसरी तरह से ही रचा है । इसको उन जानवरों जैसी आँतें, जबडा,जुबान, अदि नहीं दिया है । इस लिए मनुष्य को मांस नहीं खाना चाहिए । इस लिए त्रेता युग के प्रारम्भ काल परशुराम के समय मे **ऋषि याज्ञवल्क्य** ने सचेत अवस्था मे आए हुए प्रकृति की अनुपम रचना मनुष्यको **"उदारचरितानामतु वसुधैवकुटुम्बकम्" अर्थात मनुष्य का चरित्र उदार होता है और सम्पूर्ण पृथ्वी का जीवजन्तु एक कुटुम्बी हैं** इस सूत्र का प्रतिपादन किया । फलस्वरुप जीवहत्या निषेधित हुई । इस सूत्र ने मनुष्य को शाकाहारी बनाया । जिस के अनुसार शास्त्रीय मान्यता में पशु बलि भी स्वत: निषेधित हो गई । लेकिन मांस खाने की आदत पडी होने के कारण इन्द्रिय संयम न कर पाने के कारण अभी तक मनु की ही नीति को ढाल बनाकर मनुष्य जुबान का स्वाद ले रहा है और देवी को भी बदनाम कर रहा है ।

हाँ एक ऐसी जगह है जहाँ भवानी दुर्गा का दैत्यों के साथ युद्ध करते समय रक्तबीज का जब शिर कटता था तब जो भी रक्त की बूँद नीचे गिरती थी उससे एक दैत्य उत्पन्न हो जाता था , उस समय देवी ने आक्रोशित होकर महाकाली का रुप धारण किया और दैत्य का शिर काटने परे जमीन पर रक्त न गिरे इस लिए रक्त को खप्पर में रोककर पान करती गई थी यह कथा **दुर्गा शप्तशती के अध्याय ८ श्लोक ५६ से ६३ तक वर्णित है ।** लेकिन युद्ध के मैदान में जहाँ शत्रु के ऊपर विजय प्राप्त करना ही एक मात्र उद्देश्य होता है वहाँ यदि इस प्रकार का कार्य किया भी जाय तो उसे अनुचित नहीं कह सकते हैं इससे तो देवी की प्रकृति,प्रवृत्ति अथवा गुण अवगुण का आँकलन नही किया जा सकता है । इससे देबी को मांसभक्षी भी नही कहा जा सकता है ।

अध्याय - ५
ईश्वरका रुप रंग और निवास

आँधी तूफान और मुसलाधार बारिश ने प्रलय काल का रुप ले रखा था । मन्दिर के अन्दर भीड की वजह से न अँटाए हुए लोग दरवाजे के पास छज्जा के नीचे खडे थे । कुछ लोग तो बिलकुल भीग ही गए थे । भीगे हुए ७-८ लोग हवा लगने से ठंड से ठिठुरने लगे तो मन्दिर के अन्दर ही घुसने लगे और ठेलमठेल करके बैठने लगे । इनलोगों ने भी मन्दिर के अन्दर का वार्तालाप सुना था उस वार्तालाप में संलग्न होने पर प्राकृतिक संकट की ओर से ध्यान बँट सकता था इसलिए वे लोग भी उस परिचर्चा में रुचि लेने लगे ।

उमा : इस चर्चा में आत्मा और परमात्माको एक रुप ही बताया गया है । इससे तो तमाम प्रश्न जन्म लेते हैं । पहली बात तो यह है कि परमात्मा कल्याणकारी हैं तो आत्मा धारण करने वाला आदमी कलह रोग और शोक में क्यों डूबा है ?

रामजी : इस सम्बन्ध में हिन्दु दर्शन में **केवल निमित्तेश्वरवाद Deism** नामका सिद्धान्त है । वह यह है कि ईश्वर स्वयं में परिपूर्ण, निरपेक्ष और सर्वशक्तिमान सत्ता है । जिसे हमारे विश्व ब्रह्माण्ड और इस संसार की कोई आवश्यकता नही है। "ईश्वर ने एक से अनेक होने की इच्छा की" अर्थात ईश्वरने अपने से भिन्न पदार्थको उत्पन्न करके उसको सुख समृद्धि प्रदान करने के लक्ष्य से स्वाभाविक कर्म किया है । क्योंकि ईश्वर स्वयं भी बिना कर्म किए नहीं रह सकते हैं । यह ईश्वर की प्रकृति है - "कर्म" इसी उद्देश्य से उन्होने इस संसारकी रचना की है । जिसमें उन्होने जड और चेतन दोनो सत्ताओं की रचना करके विश्व संचालन के लिए पर्याप्त शक्ति और सामग्री उपलब्ध कर दी है उसी नियम से यह संसार स्वयं स्वचालित हो रहा है । ईश्वर ने श्रृष्टि की है, नियम बना दिया है लेकिन वे खुद इस संसार और नियम से बाहर हैं । वे संसार संचालन में कोई हस्तक्षेप नही करते हैं । इसलिए संसारके प्रांणी अपने कर्म अनुसार प्रारब्ध निर्माण करते हैं । और सुख दुख प्राप्त करते हैं । ईश्वर संसार के श्रृष्टा (creator) हैं, रक्षक या पालक नही हैं । इस कारण आदमी की गल्ती, दुष्टता, कुकर्म-सुकर्म का प्रभाव ईश्वर के ऊपर नही पडता है । लेकिन जब कभी उनकी श्रृष्टि पर ही कोई बहुत बडी बाधा या अवरोध

पडने की संभावना होती है तब ईश्वर हस्तक्षेप करते हैं । लेकिन यह सिद्धान्त उतना प्रचलित नही है ।

उमा : अच्छा चलो ठीक है । ईश्वर और आत्मा में कर्मगत भिन्नता है, मान लिया । लेकिन संसार में जितने चेतन तत्व हैं, जीव हैं, उन सबों में एक ही परमात्मा का अंश "आत्मा" विद्यमान है तो एक जीवको कोई कष्ट या पीडा होती हैं तो दूसरे जीवों में जैसे तार में बिजली का करेन्ट संचारित होता है वैसे ही और जीवों में पीडा का संचार क्यों नही होता है । अरबों खरबों आत्माएँ जब एक ही केन्द्र से जुटी हैं तो एक की पीडा की अनुभूति क्या दूसरे को नहीं होनी चाहिए ?

रामजी : अनुभूति होती है । अवश्य होती है एक जीव की खुशी में दूसरा जीव आनन्दित और दुख में दुख महसूस करता है । इस बातको हमलोगों को प्रत्यक्ष देखना तो कठिन होता है क्योंकि आत्माओं की प्रतिक्रिया आत्मिक स्तर पर ही होती है ।

रमेश : धर्म ग्रन्थों में तो ब्रह्मा श्रृष्टि करते, विष्णु पालन करते और शिव संहार करते हैं, ऐसा कहा गया है लेकिन आपने तो ईश्वर केवल श्रृष्टि करते हैं कहा है तो यह कैसे ?

किशोर : यह सिद्धान्त ही ऐसा है । वैसे तो **Deism** एक अलग ही सिद्धान्त है तो भी मैं इसके बारे में थोडी बात बताता हूँ । पहली बात यह है कि ईश्वर असीम सत्ता है । इसलिए ईश्वरका रुप, रंग, काम, कर्तव्य और अधिकार यह यह है, इस बातको सटीक तरह से कोई नहीं बता सकता है । क्योंकि ईश्वर के बारे में पूर्ण रुपेण तो कोई जान ही नही सकता है । यदि कोई ईश्वर "यह है", "ऐसा है" और "इतना" है बता देगा तो वह तो ईश्वर से अधिक जानने वाला और अधिक सामर्थ्यवान हो जाएगा न । तब तो ईश्वर "असीम" नही रह जाएगा । ईश्वर Limited हो जाएगा । लेकिन ईश्वर तो असीम सत्ता है और ईश्वर के बारे में अन्य कोई भी सत्ता अन्तिम व्याख्या नहीं कर सकती है तो भी ईश्वर को थोडा बहुत जानने, समझने और प्राप्त करने वाले विभिन्न जिज्ञासु, साधक और आत्मज्ञानियों ने अपने प्रयास से जो जैसा समझ सके वही कहा है, और वही सिद्धान्त बन गया है । यह सिद्धान्त भी इसी तरह के किसी साधक की अनुभूति ही होगा ।

धमों में ऐसे सम्प्रदाय और पंथ कैसे विकसित होते हैं ? इस बात को एक उदाहरण से समझ लो । संसार मे तमाम संत महात्मा और साधक होते रहे हैं और होते रहेंगे । इन लागों ने अपनी साधना और तप से अपनी परिस्थिति में जिसने जैसी पात्रता और क्षमता विकसित कर सका और उसके आलोक में जो समझ में आया वही कहा । उदाहरण के लिए मान लो महेन्द्रनगर से नेपालगंज जाने के लिए परम्परागत पैदल चलने का एक रास्ता है और उसी पर सभी चलते आ रहे हैं और

अपनी मंजिल पर पहुँचते भी हैं लेकिन कोई क्षमतावाला साधक यदि नेपालगंज जाने के लिए टनकपुर में रेल चढकर पीलीभीत मैलानी होता हुआ नानपारा रुपैडिहा होते हुए नेपालगंज पहुँचने का रास्ता पता लगा लेता है और वह रेल चढकर अपनी जगह पर पहुँच जाता है तो जब उसके पास रेल चढने की क्षमता थी तब उसके लिए वह रास्ता सरल हुआ, उसने और लोगों को भी उस रास्ते की जानकारी देनी शुरु कर दी, लेकिन जिसकी रेल चढने की क्षमता नहीं है वह आदमी भी टनकपुर के उस रास्ते से यदि पैदल चलता है तो पूँछते हुए , टेढे मेढे रास्ते घाट कुघाट चलना पडेगा , हो सकता है वह गलत रास्ते पर चला जाय या हो सकता है कि किसी दूसरे गन्तव्य पर पहुँच जाने की सम्भावना भी बन सकती है । यद वह सही रास्ते पर जाता भी है तो रास्ता लम्बा अैर काफी घुमावदार होने के कारण गन्तव्य तक पहुँचने में समय भी काफी लगेगा । फिर ऐसे रास्ते को चुनने से लाभ क्या हुआ ? यह तो किसी क्षमता वाले ने अपना रास्ता खुद निर्माण किया और इस लिए उसको उस रास्ते पर चलने मे सुविधा हुई लेकिन अन्य सभी तो यह काम नहीं कर सकते हैं न । बुद्ध, ईशा, विवेकानन्द, भगवान रजनीश, जयगुरुदेव, और ओम् शान्ति जैसे कई पंथ के प्रवर्तक तमाम साधकों ने जो महान क्षमता के धनी थे, जिन्होने ईश्वर तक पहुँचने का अलग अलग मार्ग खोजकर चल सके । ऐसे तमाम आकर्षक रास्तों को देखकर साधारण आदमी ललचा जाता है, भ्रमित होता है और चकरा जाता है और **"थोडा सा यह ,थोडा सा वह"**करने लगता है । लेकिन साधारण आदमी को यह समझना चाहिए कि सभी धर्म या पंथ की मंजिल एक है । सभी रास्तों का अंत भगवान में ही होता है । किसी साधक को जो रास्ता छोटा और सरल लगता है वह अपने परिस्थिति अनुसार रास्ता बनाता है लेकिन ओरौं. को वही रास्ता चलना जरुरी है क्या ? कोई रास्ता थोडा सा आकर्षक भले ही दिखे पर वह सभी के समय परिस्थिति के अनुकूल नहीं भी हो सकता है । सभी रास्तों पर एक साथ चलने से कोई लाभ नहीं होता है । उल्टे संदेह, भ्रम और अस्पष्टता ही बढती है । इस लिए भ्रमित न होकर अपने रास्ते पर विवेकपूर्वक कडाई के साथ आगे बढना चाहिए ।

रमेश : लेकिन हिन्दू वांगमय में ईश्वर के तीन रुप तो माने ही गए हैं ।

किशोर थोडा सोंचने लगे तो यज्ञ गुरु ने मोर्चा सम्हाल लिया और बोले -

यज्ञ गुरु : ठीक ही तो है, बुरा क्या है ? इसको सरल भाषा में राज्य सत्ता के हिसाब से समझो । राज्य के कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका तीन अंग होते हैं । यह शक्तिका बँटवारा है । मेकानिज्म है । सत्ता तो एक ही है । तीनों शक्तियों का श्रोत राज्य है और यह अंग भी राज्य ही हैं । ईश्वरके काम को समझाने के लिए ब्रह्मा, विष्णु और महेश कहा गया है । सरल भाषा में यह तीनों तत्व नियमों के समूह और ईश्वर की विधि व्यवस्था है । जो विश्व ब्रह्माण्ड को निश्चित नियम से चलने की अपेक्षा रखता है ।

दीपेन्द्र : आदरणीय सज्जनों । हमलोग तो शास्त्रीय मान्यता अनुसार देव दर्शन को निकले हैं । निश्चित नियमों का पालन करते हैं तब भी इस समय जीवन मृत्यु के संघर्ष में हैं । इस अवस्था के लोगों को दुख वेदना सहना और अकाल में मरना पडता है तो ईश्वर कल्याणकारी है, इस बात में शंका नही उठती है ?

यज्ञ गुरु : यह सब तो प्रारब्ध अनुसार ही होने वाली घटनाएँ हैं । इसकी चर्चा तो अभी हो ही चुकी है । जन्म जन्मान्तर के कर्म जब संचित हो जाते हैं तब प्रारब्ध बनता है जिसको भाग्य भी कह सकते हो । इसी के आधार पर फल की प्राप्ति होती है ।

दूसरी बात पर्यावरणीय नियम भी ईश्वर का ही नियम है जिसको आज के आदमी ने भंग कर दिया है । सुन्दर वन, पर्वत, नदी, नाला, झील, झरना से सजी हुई इस धरती को हमने बडी बडी मशीनों और पाइपों से रौंद डाला है, नाथ दिया है । प्रकृतिका अमर्यादित दोहन कर रहे हैं, वन जंगलों का सफाया ही कर दिया है । नदी नालों और समुद्र के गोद में बस्तियाँ बसा दी हैं । धुवाँ और कृतिम गैस से पूरा वातावरण प्रदूषित है जिसका दुष्प्रभाव हमलोगों को सहना पड रहा है । इस विषय में बहुत सी बातें हैं लेकिन मैं सब बातें बोलने में अस्मर्थ हूँ । हमने प्रकृति पर जो घोर अन्याय किया है उसी दुष्टताका प्रतिफल यह प्रकोप है । यह बात हो सकती है कि हमने दुष्टता भले ही नहीं की होगी लेकिन हम जैसे लोगों ने तो दुष्टता की ही है । और प्रत्येक जीवधारी की पारस्परिक अन्तरनिर्भरता के कारण हम लोग इस चपेट में पड गए हैं ।

तीसरी बात । प्रकृति ने आदमी, जानवर और स्वयं प्रकृति की आत्मा के निवास के लिए अर्थात साधना करने के लिए तीन तरह के स्थान बनाए हैं । लेकिन हम जानवर के लिए सुरक्षित स्थान पर आदमी की बस्ती बसाते हैं और जब जानवर हमें तकलीफ देता है तो हम उसे कोसते,गाली देते हैं और उसको मारने पर उतारु हो जाते हैं । पहाड और वन जंगल काटकर बस्ती बसाते हैं लेकिन जब भूस्खलन होता है तब हम पहाडको शरापते हैं । वास्तव में क्या इन्होंने हमें दुख दे रखा हैं ? यह तों हम हैं जो उनके क्षेत्र में जबरजस्ती घुस गए हैं, उनके खेलने और डोलने के स्थानको कब्जा कर लिए हैं, उन्हें अवरुद्ध कर दिया है तो वे नदी पहाड और समुद्र जब प्रकृति से प्राप्त अधिकार और स्वतन्त्रताका उपभोग करते हैं तो उनके अवरोधक हमलोग नष्ट हो जाते हैं । फिर उनका क्या दोष ?

अब चौथी बात मैं कर्मफल के बारे में बात कर ही चुका हूँ । कर्मफलका एक सिद्धान्त है

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

अर्थात हम शुभ अशुभ जो कर्म करते हैं उसका फल अवश्य भोगना पडता है । सुख और दुख की परिस्थितियाँ हमारे कर्म के आधार पर निर्मित होती हैं कोई गैर व्यक्ति किसी को सुखी दुखी नही कर सकता है ।

"सुखस्य दुखस्य न कोऽपि दाता ।

परो ददातीति कुबुद्धि रेषा ॥

यदि कोई अपने सुख दुखका कारण किसी अन्य व्यक्तिको मानता है तो उसकी अज्ञानता है । तुलसी दास ने लिखा है -

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता ।

निज कृत करम भोग सब भ्राता ॥

यह तो व्यक्ति-व्यक्ति के कर्मफल की बात है । लेकिन जहाँ सामूहिक त्रासदी की बात है उसमें कुछ और भी कारण हैं । सर्वसाधारण जनता और देश के प्रतिनिधि संसद और अन्य तमाम संस्थाओं में बैठते हैं यह प्रतिनिधि लोग शास्त्रीय सिद्धान्तों के विरुद्ध अपनी मनमानी करते हुए राज्य के नीति नियम बनाते हैं और जनता अथवा धर्म या राजनीतिक दर्शन के नाम पर हत्या हिंसा और विध्वंश भी करते हैं , सामूहिक हत्या नरसंहार हौर युद्ध होता है । निर्दोष आदमी और पशु मारे जाते हैं , दुख कष्ट पाते हैं और अन्यायी आततायी शक्ति के आधार पर प्राचीन मोडेल की निरंकुश और आततायी राजा जैसे मौज मस्ती कर रहे होते हैं । और जनता भी चाहे बाध्यतावश ही सही इन नीति नियम और अत्याचार का आँख बन्द करके पालन करती है और उनका जयजयकार करती है । विरोध करने वाले प्राय: स्वयं लाभ पाने के लिए और राजनीतिक कारणों से विरोध करते हैं । लेकिन उसमें नैतिकता और धर्म संगतता नहीं होती है । गंगा जैसी तमाम छोटी बडी नदियों को बन्धक बना लिया गया है, उनमें गंदी नालियाँ प्रवाहित की जा रही हैं । प्रकृतिका अनुचित दोहन हो रहा है, गोमाताकी हत्या करना, अपने सभ्यता और संस्कृति विरोधी काम करके अपनेको प्रगतिशील मानना, समाज में, अनाचार अत्याचार, भ्रष्टाचार और व्यभिचार में वृद्धि होना, नारी जाति प्रति हिंसा और बर्बरता में बढोत्तरी होना और हमारा मौन दर्शक होना, तीर्थ यात्रियोंमें कुछ तो केवल मनोरंजन के लिए जाते हैं और छिपछिपाकर मदिरा ले जाते हैं लडकियाँ भी साथ होती हैं उनके साथ पिकनिक मनाना व्यभिचार में लिप्त होना और तीर्थ का अध्यात्मिक वातावरण बिगाडना । इन चीजों में हम सभी थोडे बहुत जिम्मेदार हैं । इसीका प्रतिफल ऐसी सामूहिक व्याधियाँ हुआ करती हैं ।

धरती के गर्भ में अप्राकृतिक काम करना, पर्यावरण बिगाडना, इसमे किसी न किसी रुप में हम जिम्मेदार हैं । इसका प्रतिफल महाभूकम्प , बाढ, भूस्खलन, समुद्री

आँधी, चक्रवात, आँधी,युद्ध,आदमी का पागलपन , सामूहिक हत्या, अति बृष्टि, अनावृष्टि महामारी, और ऐसी ही सामूहिक व्याधिग्रस्तता है । आखिर में धरती पर आदिमी द्धारा इकट्ठी की गई दुष्प्रवृत्ति या नकारात्मकता या पाप को प्रकृति को ही तो साफ करना पडता है न ? और उसने यही तो किया है । यह सफाई का काम तो निरंतर चलने वाली प्रकिया है । प्रकृति इस तरह की सफाई के लिए छोटे बडे काम किया ही करती है । यह विनाश तो क्या ? आवश्यकता पड जाय तो यह प्रकृति तो प्रलय करने के लिए महाभूकम्प,महाविनाश भी कर सकती है ।

प्रियंका : इसका मतलब इस समय हम जिस विपत्ति में फँसे हैं, यह सब ठीक है सही है, न्याय संगत है ?

यज्ञ गुरु : इन दुख कष्टों के बारे में सीधे इसी तरह की बात की ही नही जा सकती है, यह तो मैं नहीं कहूँगा । बल्कि अपराध को इस तरह सीधे स्वीकार कर लेने से आत्मग्लानि होती है इससे प्रायश्चित करने की प्रेरणा मिलती है । तसर्थ ज्ञानियों के लिए तो ऐसे सीधे कह देना ठीक ही होता है । लेकिन साधारण आदमी को इस तरह से सोंचना ज्यादा अच्छा होगा कि संसार में जितना भी दुख है, और वह दुख भी जिसे हमने देखा जाना सुना नहीं है, और हमारी कल्पना में भी नहीं आता है , वैसा दुख भी इसी संसार के प्राणी के लिए ही तो है, इस पृथ्वी के प्राणियों को ही तो सहना होता है । कष्ट में कौन नही पडा है ? राम, कृष्ण, सीता, राधा, बुद्ध, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, सूर्य, चन्द्र, नदी, नाला, पत्थर, पहाड, वन यावत संसार । जो यहाँ है, जिसका अस्तित्व है, उसको कष्ट सहना पड सकता है, और जिसने जन्म लिया है उसे मरना ही पडेगा । आदमी, पशु, पंक्षी, ग्रह, नक्षत्र, तारा, नदी, पर्वत सब की आयु निश्चित है ।

नीलू : तो जब सब कुछ पहले से ही सुनिश्चित है तो आदमी को कर्म करने की आवश्यकता ही नहीं है ।

यज्ञ गुरु : भगवद् गीता में अर्जुन ने जब यही प्रश्न किया था तब भगवान श्रीकृष्ण ने इसका उत्तर दिया है । प्रमाण देखो :

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।

मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

श्रीमद्भगवद्गीता २।४७

(तुम को कर्म करने का केवल अधिकार है । फल की आशा नही करनी चाहिए । फल तो मेरे अधीन है ।)

कर्म करना परमात्मा का स्वभाव है इस कारण से आदमी का भी स्वभाव कर्म करना है । वह चाहे या न चाहे उसे कर्म करना ही पडेगा । बिना कर्म किए हुए वह एक क्षण नहीं बिताता है । कर्म करने में आदमी पूर्ण स्वतन्त्र है लेकिन फल प्राप्ति आदमी के हाथ में नहीं है । क्योंकि आदमी जितने कर्म करता जाता है, उसका विश्लेषण और वर्गीकरण होता रहता है और "प्रारब्ध" अर्थात फल बनता जाता है ।

यदाकदा अच्छा काम करने वाला दुख और खराब काम करने वाला सुख पा रहा दिखाई पडता है । लेकिन अच्छे कामका परिणाम सुख और खराब कामका परिणाम सुख तो हो ही नहीं सकता है । यह तो कालभोग में ऐसा दिखता भर है । परिणाम देर सबेर जब भी प्राप्त होता है - अच्छेका अच्छा और खराबका खराब ही होता है ।

कहते हैं कि माता काली के परम उपासक रामकृष्ण परमहंस और माता कालीके बीच बात चीत होती थी, रामकृष्ण माताजीको भोजन भी करवाते थे ।इतने पहुँचे हुए संत रामकृष्ण को भगंदर रोग हो गया और उस असह्य पीडा के बारे में भक्तों ने जब माताजी से कहनेका सुझाव दिया तो रामकृष्ण ने हंसकर कहा-पहली बात तो माँ को इस कष्ट की जानकारी है, दूसरी बात यदि मैं उनसे इस कष्टका निवारण करवा भी लूँ तो जिस किसी पापका यह परिणाम है, वह माफ तो हो नहीं जाएगा, अगले किसी जन्म में भोगना तो पडेगा ही । इस लिए इसी जन्म में हिसाब साफ कर लेना ठीक रहेगा । इस बात से कर्मफल का प्रमाण मिल जाता है ।

रुपक : अच्छे कामका अच्छा और खराब कामका खराब परिणाम अगर तुरन्त होता तो आदमी खराब काम करने से डरता और अच्छा काम करता तब यह दुनिया सुन्दर होती । ईश्वर ने ऐसी व्यवस्था क्यों नही की ?

रामजी : ईश्वर की व्यवस्था ही ऐसी है । हम सभी लोग यह भली भाँति जानते हैं कि खराब काम नहीं करना चाहिए फिर भी खराब काम करते हैं । बबूल का पेंड लगाते हैं और आम फलने की आशा करते हैं । बबूल के पेंड में जो काँटा निकलता है और आमके पेंड में जो आम फलता है वह पेंड लगाते ही तो नहीं फलता है न । जब पेंड परिपक्व हो जाता है तभी काँटे के पेंड में काँटा और आम के पेंड में आम फलता है । लाल मिर्च की पत्ती, तना और कोमल मिर्च तो कडुई नही होती है ,जब वह पेंड और फल परिपक्व हो जाता है तब मिर्च कडुई होती है । इसी तरह से पाप पुण्य को भी पकना पडता है और समय आने पर यह फलित होते हैं । यह तो प्रकृतिका ही नियम है और यह नियम बहुत कारणों से ठीक भी है ।

गायत्री : अच्छा तो सभी प्रकृति के आदमियों की समझ में "यह ही भगवान हैं" यह बात किसी तरह से समझ में आ सकती है क्या ?

तमाम शंका उपशंकाओं के उत्तर के वाद भी बात तो फिर पुराने जगह पर आ गई । तब यज्ञ गुरु दीवालका टेक लगाए, जो थके से बैठे थे, वह फिर थोडा सीधे होकर बैठ गए और बोले -

यज्ञ गुरु : ईश्वर के अस्तित्व के बारे में तुम लोग क्यों नहीं स्पष्ट हो पा रहे हो ? इतनी बातों के बाद भी प्रश्न वहीं पर है । लो फिर से सुनो । यह भूमण्डल, वायुमण्डल, चन्द्र, सूर्य, तारा मण्डल और निहारिकाएँ सहित हम लोग जो कुछ भी देख रहे हैं, इतना ही संसार नहीं है । व्यापक अर्थ में कहें तो ऐसे सूर्य, चन्द्र, ग्रह, उपग्रह, निहारिकाएँ और तारामण्डल अरबों खरबों हैं । कितने हैं ? इसका कोई हिसाब ही नहीं हो सकता है । इस आकाश की फैलावट के बारे में कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है । इसमें शास्त्र ने यद्धपि सात लोक और चौदह भुवन की बात की है लेकिन इसका विस्तार अनन्त है । यह अनन्त है । इस अनन्त शून्य में जो अरबों खरबों पृथ्वी, ग्रह, नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र और तारे हैं वे कोई भी स्थिर नही हैं । इस शून्य में सभी एक निश्चित और अलग अलग गति में दौड रहे हैं घूम रहे हैं, नाच रहे हैं । सब की निरंतर यात्रा जारी है । इन सभी का सभी के साथ निश्चित सम्बन्ध है, निश्चित दूरी और निश्चित निकटता है । सभी कुछ सुनिश्चित और अनुशासित है । यदि ऐसा न होता तो यह सब आपस में लड जाते और ध्वस्त हो जाते । इन सभी की उत्पत्ति किस तत्व से हुई है और मूल तत्व क्या है ? इन सबको दिशा और अनुशासन कौन दे रहा है ? क्या किसी सूत्रधार और संचालक के बिना ही ऐसी गतिशीलता सम्भव हो सकती है । किसी आटोमेटिक मशीनको विधिवत आप्रेट करने के बाद मशीन क्रियाशील होती है और अपना काम करती है । अटोमेटिक मशीनका मेकानिज्म स्वसंचालित होनेकी स्थिति में बना होता है और उसका संचालन करते रहने की जरुरत नही पडती है । ठीक इसी तरह, ईश्वर ने **"एक से अनेक"** - होनेकी इच्छा करते ही ये ग्रह, नक्षत्र, पहाड, पृथ्वी, नदी, समुद्र, आदमी, पशु पंक्षी, वन जंगल आदि विभिन्न दृश्य और अदृश्य चीज वस्तु प्रकट होकर स्वसंचालित हुए हैं । यह श्रृष्टि ईश्वर की फैलावट है ।

मनुस्मृति प्रथम अध्याय के श्लोक ४ से ३५ तक भगवान की श्रृष्टि रचना की व्याख्या है । ईश्वर ने अपनेको विशाल और विभिन्न रुपों में प्रकट किया है । और ईश्वर जब अपनी विशालताको सिकोडते हैं तो यह सभी दृश्य अदृश्य चीजें सिमटकर ईश्वर में ही विलीन हो जाती हैं । ठीक चीनी के "बम्बईया लड्डू" की तरह । देखने पर बडा सा, मुठ्ठी में दबा लो तो थोडा सा । उस लड्डूका मूल तत्व एक दो दाना चीनी भर तो है । आदमी, पशु, पंक्षी, पेंड पौधे आदि दृश्यमान जगत

के अंत होने पर शेष क्या बचता है ? केवल मिट्टी । तो हमारा मूल तत्व क्या है ? मिट्टी । प्राण कहाँ गया ? उसी परम तत्व में ही तो मिल गया न ?

इस प्रकार ईश्वर विभिन्न रुप में प्रकट हुए हैं । इस लिए उनका रुप रंग कोई एक जैसा है ही नहीं । हम जो देखते हैं, सुनते हैं और अनुभव करते हैं वह सब ईश्वर के ही रुप हैं । **ईश्वर जब सिमट जाय तो निराकार हैं और फैल जायें तो साकार हो जाते हैं । ईश्वर सम्पूर्ण विश्व, ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं । कोई ऐसी जगह नही है जहाँ वे न हों और ऐसा कोई रुप या आकार नही है जो उनका न हो ।**

उमा : हाँ अब समझ मे आ गया । "कण कण में भगवान हैं" । मुश्लिम लोग भी तो जर्रे जर्रे मे ईश्वर है कहते हैं न ? यह बात तो ठीक लगी ।

यज्ञ गुरु : बात इतनी ही नहीं है । **कण कण मे भगवान हैं यह कहने की अपेक्षा "कण कण ही भगवान है" यह कहना चाहिए । तब बात बनेगी । भगवान विश्व ब्रह्माण्ड में व्याप्त एक विद्युत तरंग का प्रवाह ,भँवरा के जैसा गुंजायमान होती हुई एक ध्वनि विशेष है ,जो इच्छानुसार जैसा और जो भी रुप धारण कर सकती है ।**

उमा : लेकिन किसी किसी धर्म सम्प्रदाय में ईश्वर केवल मन्दिर में या निश्चित क्रियाविधि सम्पन्न होने वाले स्थान में होते हैं कहा गया है । यह क्या बात है ?

यज्ञ गुरु : यदि किसी धर्म सम्प्रदाय ने ऐसा कुछ कहा है तो वही जाने । मैं फिर वही बात दुहरा रहा हूँ कि ईश्वर तर्क वितर्क का विषय ही नही है । ईश्वर श्रद्धा, विश्वास और आस्था का नाम है । पत्थर पर हमारी श्रद्धा विश्वास और आस्था जब दृढ हो जाती है तो किसी पत्थर के खम्भे को चीरकर नरसिंह भगवान प्रकट हो जाते हैं और द्रोपदी की साडी लाखों मीटर बढ जाती है । ईश्वरीय सहायता अचानक प्राप्त होने के तथ्य और प्रमाण सर्वविदित ही हैं । वे सब स्थान मन्दिर तो नहीं होते हैं न ? जहाँ भगवान अचानक प्रकट हो जाते हैं और अपने भक्तों को आकस्मिक सहायता करते हैं । हमारे सभी शास्त्र और अन्य सभी प्रमुख धर्मों में ईश्वर को सर्व व्यापी और अविनाशी ही कहा गया है ।

प्रियंका : तो इसका मतलब कि भगवानका चेहरा मोहरा-दृश्य अदृश्य सभी चीज वस्तुओंका मिश्रित रुप है और उनका घर सम्पूर्ण विश्व ब्रहमाण्ड है । यही न?

यज्ञ गुरु : ईश्वरका स्वरुप तुम्हारे कहने के अनुसार ठीक है । कौशल्या, यशोदा, अर्जुन और काकमुशुण्डीको इसी विराट रुपका दर्शन हुआ था । ईश्वरका घरका मतलब यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड । ईश्वर की उपस्थितिका प्रमाण पाने की इच्छा रखने वालेको अपनी बाहिरी आँखा बन्द करके अपनेको संसार से अलग करके अर्थात

संसारको साक्षी भाव से देखनेका अभ्यास करने के लिए सर्व प्रथम तो अपनी दशों इन्द्रियों को अपने वश में करना पडेगा । फिर मनकी दौड रोकनी पडेगी । तब बाहरी संसार में रमा हुआ मन अंतरमुखी होकर अपने अन्दर की यात्रा शुरु करता है । मन जब अपने अन्तरस्थल में उतरने लगता है तब उसको प्रकाश दिखने लगता है, ईश्वरका आभास होने लगता है । ईश्वरका अनुभव करने की प्रक्रिया ध्यान, धारणा, और समाधि है । दूसरा तरीका भक्ति मार्ग है, उनका स्मरण, नाम संकीर्तन करते हुए उन्हीं में डूब जाना या आर्तभाव से पुकारना ।

उमा : भौतिक वादी तो कहते हैं कि ईश्वर है ही नहीं, और स्वर्ग, नर्क, पाप, पुण्य, पुनरजन्म आदि सबको मिथ्या, और बकवास मानते हैं ।

यज्ञ गुरु : ये भौतिकवादी भी तो इसी संसार के प्राणी हैं । सुख, दुख, लाभ हानि, जीवन मरण, से अलग तो नही हैं न । ये भी इस संसार को सुखी देखना चाहते होंगे । इस संसार में ईश्वरीय सत्ता व्याप्त है और कर्मो के अनुसार फल भी मिलता है इस मान्यता में विश्वास रखने वालों की संख्या ही संसार में अत्यधिक है । नास्तिक तो एक मुठ्ठी भर ही होंगे । तो जब इतनी बडी जनसंख्या भगवानका भय मानती है तो भी इस संसार में इतना अत्याचार, पाप और पाखण्ड है लेकिन यदि सभी के मन से अदृश्य सत्ता का भय पूर्णतया निकल जाय तो इस संसार में लूट, हत्या, बलात्कार, चौतर्फी भय और पूर्ण अशान्ति फैल जाएगी । उस अवस्था में तो यह पृथ्वी नर्क बन जाएगी । cut you can, take what you can. प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिको खतम करना चाहेगा । यह धरती मानव विहीन हो जाएगी । वे नास्तिक भी तो नहीं बचेंगे । वे भी नष्ट हो जाएँगे ।

चलो, थोडी देर के लिए नास्तिकों की ही बात मान लेते हैं कि भगवान है ही नहीं । लेकिन किसी अदृश्य सत्ता के भय के अभाव में जब मानव और मानवता ही नष्ट हो जाने की पूर्ण सम्भावना है तो खेत बारी में फसल की सुरक्षा के लिए खडा किया गया ऊढ scarcrow(कपडा,पुआल या भूस का पुतला) की तरह एक झूठ ही सही एक भगवान की कल्पना कर लेने से क्या बिगडता है ? काल्पनिक ही सही, ईश्वरीय सत्ता की मान्यता के कारण मानव जाति में दया, प्रेम, करुणा, पारस्परिक सहयोग और सह अस्तित्व में विश्वास पैदा हुआ है और जंगली आदमी आजका सुविकसित मानव बन सका है तथा सुन्दर भविष्यका राजमार्ग खुला है । यह पृथ्वी और प्राणी जगत के जीवित रहनेका आधार एक अदृश्य शक्ति "ईश्वर" अदृश्य भय के रुप में खडा है । तब बताओ, भगवान मानकर किसीका क्या नुकशान हुआ है । चलो कल्पना ही सही । नास्तिककी बात ही ठीक सही । लेकिन दैवी सत्ता की सोंच के कारण संसार कायम तो हैं । फिर इस कल्पना के प्रति श्रद्धा और कृतज्ञता क्यो न प्रकट करें ?

गणित में अज्ञात उत्तर निकाल्ने के लिए एक उत्तर की कल्पना की जाती है कि मानो वह संख्या X है और प्रश्न हल करते जाते हैं अंत में सही उत्तर प्राप्त हो ही जाता है । कल्पना विना कोई भौतिकवादी सही उत्तर निकाले तो देखें । कोई नास्तिक इसीका तर्क संगत उत्तर दे भला । बाहुबल दिखाने से हर जगह काम तो नही चलेगा । भगवान प्राप्ति की विधि और प्रक्रिया जो सच है, मैं बता चुका हूँ । केई भौतिक सम्पदा खर्च किए बिना केवल जिज्ञासा और साहस जुटाकर कोई ईश्वरकी वास्तव में खोज करता है तो में विश्वास के साथ कहता हूँ कि वह ईश्वरके नजदीक पहुँच सकता है । ईश्वरका अस्तित्व है, यह कल्पना नही है, यह बात वह स्वयं अनुभव कर सकता है ।

आदित्य : यह विधि और प्रक्रिया तो बहुत ही कठिन है ?

यज्ञ गुरु : विधि और प्रक्रिया तो तरल ही है । लेकिन जिज्ञासुको सर्वप्रथम अपना ज्ञान, आग्रह और विचारको बाहर फेंक कर अपने आपको खाली करके सत्यकी खेाज करनेका साहस जुटाना ही कठिन है । पहला कदम उठाना ही कठिन है अन्यथा हिमालय भला कितना ऊँचा है ? एक एक कदम से दूरी घटती है । लेकिन सबसे पहले चाहिए इच्छा, उच्च मनोबल और साहस । फिर प्राप्त न होने वाली चीज क्या है ?

बालक नरेन्द्र के मन में भी ऐसी ही जिज्ञासा उठी थी लेकिन उसने साहस किया और अंत में सत्य को खोज निकाला जिसके कारण वे स्वामी विवेकानन्द हो गए और अमेरिका तक धर्म ध्वजा फहराई । बडे बडे भौतिकवादी और क्रिश्चियन धर्मावलम्बी अंगरेज भी उनके पैर पर झुके ।

अध्याय ६

धर्म और दैवी शक्ति

रमेश : भगवान को ढूँढते हुए घूमने की अपेक्षा क्या मानव मुक्ति का और कोई सरल रास्ता नही है ।

यज्ञ गुरु : दूसरा रास्ता ? दूसरा रास्ता यह है कि भगवान को न ढूँढो । ढूँढते घूमने की अपेक्षा नीति नियम में रहना ही आदमी के लिए पर्याप्त है । कुछ सरल बातें सुनो -

आषता सङ्ग दोषेण साधवो यान्ति विक्रियाम ।

दुर्य्योधन प्रसङ्गेन भीष्मो गो हरणे गत : ॥

पंचतन्त्र कथा क्रम - ८

(दुष्ट का साथ करने से सज्जन भी दुष्ट हो जाता है दुर्योधनके साथ में भीष्मपितामह भी गाय चुराने चले गए थे)

मृग-मीन-सज्जनानां तृण-जल-संतोष विहित वृत्तिनाम

भर्तृहरि नीति शतक-६१

(मृग घास में, मछली जल में, और सज्जन आदमी संतोष में सुख मानता है और ये लोग किसी को नहीं सताते हैं)

अनभ्यासे विषं शास्त्रम, जीर्णे भोजनं विषम ।

चाणक्यनीति-४-१५

(जैसे पेट में कब्ज हो और भोजन कर लिया जाय तो वह भोजन विष तुल्य हो जाता है इसी तरह से निरन्तर अभ्यास न करने से शास्त्र ज्ञान भी घातक विष बन जाता है)

मुक्त्वेकं भव दुख-भार रचना विध्वंसकालानलम् ।

स्वात्मानन्द पद प्रवेश कलनं शेषैर्वणिग्वृत्तिभि

भर्तृहरि वैराग्य शतक-७१

(केवल ब्रह्म चिन्तन द्वारा ही नित्य सुख प्राप्त किया जा सकता है बाकी बातें तेा बनिया के व्यापार जैसी लेनदेन में आधारित हैं । तसर्थ **ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या** ही शाश्वत सत्य है ।

आशु : भगवान को मानने से पहला नुकशान तो यह दिखता है कि गुरु, पुरोहितों का पाखण्ड, पण्डा पुरोहितों की ठगाई, जाल, परपंच, जादू टोना, अंध

विश्वास ग्रह-दशा विचार, नक्षत्र और देवी देवता की रुष्टता जैसी कथाओं से भाग्यवादिता के प्रभाव से मनुष्य की असफलता । सामाजिक विकृति की वृद्धि । बहुत ही नुकशान दिखता है ।

यज्ञ गुरु : तुम्हारा स्पष्ट संकेत हिन्दुओं के तीर्थस्थल, देव स्थल तथा पण्डा, पुजारी और पुरोहितों की तरफ है । ठीक है । तो पहले दूसरे धर्मों का परीक्षण करें । इस्लाम में प्रत्येक मुसलमान को प्रत्येक वर्ष प्रति व्यक्ति एक दिन के बच्चे से वृद्ध तक सभी लोगों को अपने नजदीकी मस्जिद में निश्चित मात्रा में ५ किलो अन्न दान करना ही पडता है । सब देते हैं । अल्लाह का डर है । रोजा, नमाज और सप्ताह में एक बार सभी लोग मस्जिद में जुटते भी हैं । धार्मिक विचार विमर्श, निष्कर्ष और पुरोहित का आदेश सर्वमान्य होता है । कोई भी तर्क वितर्क नहीं करता है क्योंकि अल्लाह से बडा कोई नही है । क्रिश्चियन और सिख धर्म में भी लगभग ऐसा ही है । इसलिए गुरु पुरोहित को गुजारे के लिए बहुत बडी समस्या नही होती है । धार्मिक काम और यज्ञ भण्डारा चला करता है । लेकिन सनातन हिन्दू धर्मावलम्बी ? मनुस्मृति और चाणक्य नीति में सबको अपनी कमाई का एक निश्चित अंश दान करनेको लिखा है । इसके अलावा विभिन्न चाड पर्व और खेत खलिहान से गुरु, पुरोहित, गरीब, अपाङ्ग और अशक्त को दान देनेका प्रावधान है । लेकिन ऐसे नियम अब लगभग लोप हो चुके हैं । तीर्थाटनको जाने वाले कतिपय लोग यदि मठ मन्दिरों में निःशुल्क खाते पीते और रहते हैं, बिजली पानी और सभी सुविधाएँ प्राप्त करते हैं, तेा भी चलते समय ५-१० रुपये चढाकर चल देते हैं और कुछ भी न देकर चलने वाले लोग तो अपने को और अधिक चालाक समझते हैं । खाने और रहनेका न्यूनतम शुल्क भी नहीं देते हैं । तब भला धर्मस्थलों का व्यवस्थापन जीर्णोद्धार और गुरु पुरोहितोंका गुजारा कैसे चले ?

दूसरी बात । हम गुरु पुरोहितको घर बुलाते हैं, कथा पुराण सुनते हैं, श्राद्ध करते हैं, साइत, लगन, ग्रह, दशा विचरवाते हैं, दिन भर बैठाए रहते हैं और विदाई में एक खुराक चावल, १०।- २०।- रुपये रख देते हैं । गोदान करते हैं तो ५।- या ११।- रुपये में । इस समय निरक्षर श्रमिक की दैनिक मजदूरी लगभग ४००।- रुपये है और हमारा पुरोहित कितना पाता है ?

तीसरी बात । हम अपनी आकांक्षाएँ और महत्वाकांक्षाएँ दूर करने के लिए मनौती करते हैं । भगवान से करोडों, अरबों खरबों धन, पुत्र, पुत्री, सुख समृद्धि पाने के लिए, उद्योग व्यापार चलाने और यहाँ तक कि जुवा जीतने चोरी, डकैती और मुकदमेंबाजी में सफलता के लिए भी भगवानको पुकारते हैं । क्या भगवान हमारे नौकर हैं ? देवी देवता हमारे दास हैं ? और ये सब इतने सस्ते, गरीब, लोभी और उल्लू हैं कि हमसे सौ-पचास रुपयेका भोग प्रसाद, नारियल लेकर हमको अतुल सम्पदा देवें ? हमारी उचित अनुचित सभी इच्छाएँ पूरी करें ? हमारे आगेपीछे नाचें

? कैसी विडम्बना ? कैसी बेवकूफीपूर्ण सोंच ? अरबों की चाहना रखने वाला आदमी भगवानको एक खसी बकरी चढाकर और थोडी मिठाई फलफूल देकर फुसलाना चाहता है । निरीह पशु का बलिदान ? जिस पशु का अपना कोई स्वार्थ नहीं । देवी देवता के प्रति यदि श्रद्धा या समर्पण है और यदि मानव को यह विश्वास है कि देवी देवता रक्त के प्यासे हैं,और उनको जब तक हम रक्त दान नहीं करेंगे तब तक वे प्यासे ही रहेंगे, तो वह अपने शरीर का रक्त , मांस और अंग क्यों नहीं चढाता है ?

चौथी बात आदमी आज इतना कामचोर और हरामखोर हो गया है कि बिना काम किए ही मीठा फल खाना चाहता है । बिना लगानी के ही धन चाहता है । और अशान्तिपूर्ण काम करके शान्ति चाहता है । इसके लिए तन्त्र, मन्त्र, ताबीज और रत्न धारण तथा दान, पुण्य उपवास आदि उपाय का सहारा लेता है । यद्धपि इन कामों और उपायोंका अलग ही महत्व है लेकिन श्रम, लगानी और तप बिना ही कोई फल और दर्घिकालीन सुख, समृद्धि की चाहना रखना तो मूर्खता ही है । औरों को उपदेश देने वाले समाज के अगुवाकार भी ऐसे ही काम में लिप्त दिखाई पडते हैं ।

एक समय की बात है, रोम के पादरी विभिन्न शहरों में जाकर पाप मोचन यन्त्र (ताबीज) बेच कर खूब पैसा कमाते थे । इसी क्रम में पादरियों की एक टोली किसी शहर से यंत्र बेंच कर दूसरे शहर में जा रही थी कि डकैतों ने रासते में घेर लिया । पादरियों ने कहा कि हम पादरी हैं हमें लूटोगे तो पाप लगेगा । डाकुओं ने गले में पहना हुआ पापमोचन यंत्र दिखाकर कहा कि अब कैसे पाप लगेगा ? हम तो यंत्र पहने ही हैं ? और उनको लूटा-पीटा भी । कितना गजबका तर्क ? जैसे को तैसा ।

हमारा समाज लोभ, मोह और तमाम विकृतियों में ऐसा जकडा है कि खुद अपने स्वार्थ के अतिरिक्त और कुछ देखता ही नही है । हम ईश्वर को मानते हैं लेकिन ईश्वर की कही हुई बात और बताए हुए रीते को नहीं मानते हैं । हम अपने स्वार्थ अनुसार धर्मकी व्याख्या करते हैं । गुरु, पुरोहित, मठ मन्दिर और धर्म के नाम पर न तो धन खर्च करना चाहते हैं और न तो श्रम ही खर्च करना चाहते हैं । गुरु पुरोहित की बात छोडें, शंकराचार्य, जो समय समय पर युग धर्म बताने के लिए नियुक्त होते हैं, धर्मका विश्लेषण करते हैं, जिनका धार्मिक आदेश वेद जैसा पालनीय और हिन्दू मात्र के लिए अन्तिम आदेश होता है, उसपर कोई तर्क वितर्क नही किया जा सकता है, नही करना चाहिए, उसपर आजका हिन्दू कितना विश्वास, और श्रद्धा करता है विचारणीय है, चिन्ताका विषय है ।

इस अवस्था के हमारे समाज में गरीब गुरु, पण्डा पुरोहित जिनकी युगानुकूल इच्छा, आकांक्षा और आवश्यकताओं में व्यापक वृद्धि हुई है, घर परिवार बाल बच्चों का लालन पालन और आज के समाज के परिवेश में शिक्षा दिक्षा में भी विकराल

खर्च बढ रहा है । महंगी की मार पड रही है, जीवनोपयोगी मशीन, आधुनिक और आवश्यक सुविधाएँ जुटानी पडती हैं, उनको भी तो इसी परिवेश में रहना है और अन्य व्यक्तियों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता भी बना कर रखना है । ऐसी परिस्थिति में बाध्यतावश वे हमको ठगते हैं तो दोषी कौन है ? हम कि वे लोग ? सप्ताह में एक दो जगह कथा वार्ता सुनाकर दो चार सय रुपैया कमानेवाले दोषी कि हमारा कन्जूस समाज दोषी ? इस लिए मैं तो यह कहता हूँ कि अन्य विविध कामों में हम अपनी शक्ति और सामर्थ्य जिस तरह खर्च करते हैं उसी तरह से धर्म क्षेत्र में भी पर्याप्त खर्च करना चाहिए । लेकिन हम नहीं करते हैं । क्यों ?

हम कुत्ते बिल्ली के जन्मदिन पर लाखों खर्च करते हैं लेकिन सन्तान के जन्म पर नामाकरण करनेवाले, यज्ञ कराने वाले,आशीष देने वाले, यज्ञ और धार्मिक कार्यक्रम में तथा पितृ तर्पण, श्राद्ध में सौ पचास पाकर भी मानवीय व्यवहार में सुख शान्ति और सात्विक दीर्घकालीन उपाय बताने वाले ये गुरु पुरोहित दोषी हैं ? क्या सामाजिक न्याय यही है ?

यज्ञ गुरु बोलते बोलते थक गए और खाँसते हुए निढाल होकर दीवाल के सहारे टिक गए । सब चुप हो गए । सभी चिन्तित हो गए । तीर्थ में आत्म सोधन का अनुभव करने लगे । थोडी देर बाद उन जिज्ञासुओं की भीड में से एक नवयुवक बोला -

रुपक : हिन्दु धर्म में जब इतनी अधिक विकृतियाँ हैं तो इस धर्म की तुलना में क्या अन्य धर्म श्रेष्ठ हैं ?

यज्ञ गुरु : अभी मैने जो बाते की हैं वह सामाजिक यथार्थ है । लेकिन मैं उन गुरु पुरोहितों के ठगी, बेइमानी, और चोरी के पक्ष में नहीं हूँ । मैं तो यह बताना चाहता हूँ कि इस अवस्था का सुधार होना ही चाहिए । अन्यथा बडी भारी दुर्घटना हो सकती है । वैदिक **सनातन हिन्दू धर्म वास्तव में आदमी के जीवन जीने की पद्धति है ।** परापूर्व काल में हमारे आदि पूर्वजों ने विकास क्रम में सैकडौं- हजारौं वर्ष के अनुभव के आधार पर ठीक ठहरे हुए काम को करने की और गलत ठहरे हुए काम को नहीं करने की व्यवस्था दी । अर्थात कर्तव्य को धर्म और निषेध को पाप कहा । इस प्रकार इस धर्म का संस्थापक कोई एक व्यक्ति नहीं है और किसी निश्चित दिन तारीख को इसकी घोषणा नही हुई है । **यह धर्म "कर्तव्योंका समूह"** होने के कारण मानव जाति के विकास क्रम में जब जो कार्य या व्यवहार अनावश्यक या गलत ठहरा, वह हटता गया और जो कार्य व्यवहार समाज के लिए आवश्यक हुआ उसमें सुधार परिमार्जन और व्यवस्थापन होता चला गया । इस प्रकार यह धर्म समय, परिस्थिति और उपयोगिता से विकसित हुआ है । इस कारण

इसमें तर्कशीलता और विचार विमर्श की कदर होती है । नवनवीनता को धारण करने की प्रवृत्ति और नित्यता की प्रकृति के कारण इसे "सनातन" कहते हैं । इसी लिए इस धर्म के किसी सिद्धान्त विशेष को विस्तृतीकरण या विशिष्टीकरण करने के प्रयत्न में शैव, शाक्त, वैष्णव, कृष्ण प्रणामी, रामानन्दी, कबीरपन्थी, भक्तिमार्गी, ज्ञानमार्गी, अघोर पन्थी,ओम्शान्ति, जय गुरुदेव, नानकशाही आदि तमाम पंथ और बौद्ध, जैन, सिख आदि सम्प्रदाय अलग धर्म के रुप में विकसित हुए हैं । इस्लाम, यहूदी और क्रिश्चियन धर्म को भी सनातन धर्म अर्थात मानव धर्म के सिद्धान्तों का बल प्राप्त हुआ दिखाई देता है । छोटकरी में कहा जाय तो सनातन धर्म के अतिरिक्त अन्य सभी धर्मों के प्रचलन की दिन तारीख और प्रवर्तक हैं । जैसे इस्लाम के मुहम्मद साहब, इसका प्रारम्भ छठी शताब्दी, ईशाई धर्म के ईशा मशीह और प्रारम्भ ईश्वी सन के शुरु में, सिख के प्रवर्तक गुरु गोविन्द सिंह और समय सन् १७५५ ई.,इसी तरह संसार के अन्य धर्म और पंथो का इतिहास किसी महापुरुष और किसी निश्चित समय से शुरु होता है ।

कमी कमजोरी के सन्दर्भ में आज के समाज के आवश्यकता के आधार पर सभी धर्म, सम्प्रदायों में कुछ न कुछ सुधार की आवश्यकता दिख सकती है तो यह तो आदि धर्म है इसलिए इसमें कुछ सुधार आवश्यक महसूस होता है तो सुधार होना भी चाहिए । इस धर्म के सिद्धान्त और व्यवहार में तथा इसके प्रयोग में व्यवसायिकता का प्रवेश जरुर हुआ है, और जहाँ मानव जाति है वहाँ थोडी बहुत व्यवसायिकता तो होगी ही,क्योंकि मनुष्य जाति की बुद्धि में ही व्यवसायिकता घुसी हुई है । इस धर्म में भी कतिपय ठग, चोर, डकैत, आलसी और प्रमादी लोग भी साधु का भेष धारण करके इसमें घुसे पडे हैं । उनसे ज्ञान, परोपकार, नम्रता और समाज निष्ठता की आशा करना ही व्यर्थ है । कतिपय छद्म भेषधारी साधु जो दूसरों को उपदेश देते हैं और खुद छिप छिपा कर अफीम, मांस-मदिरा, भाँग धतूरा खाते और मस्त रहते हैं, झगडा, गाली गलौज, ठगी,उद्दंडता और व्यभिचार करते हैं । इन आचरणों के कारण इस धर्म को बहुत बडा आघात पहुँचा है ।

"तस्करः आशक्त साधुवा" ।

"नारि मरी धन सम्पति नासी । मूड मुडाय भए सन्यासी ॥" जैसी उक्तियाँ प्रचलित हैं तो कहीं गलत जरुर होगा । ऐसी विकृतियों पर अंकुश लगाने वाले शंकराचार्य निरीह हैं और राजनीतिक शक्तियों के लिए धर्म सुधार माने सर्प के बिल में हाथ डालने जैसी बात है । धर्म को व्यापार या व्यभिचार का रास्ता बनने से रोकने का साहस कौन दिखाए ? धर्म और जाति के आधार पर कोई छोटा कोई बडा, कोई पूज्य तो कोई अछूत होने की गलत परम्परा को रोक पाना कठिन हो रहा है । यही तो मूल समस्याएं हैं,जिसके कारण यह सनातन धर्म जो संसार की सर्व श्रेष्ठ

जीवन पद्धति है, यही आज युवा पुस्ता से उपेक्षित-अवहेलित तथा पुराने पुस्ता से तिरस्कृत होती जा रही है ।

गायत्री : तो फिर हिन्दू धर्म का सरल अर्थ क्या है ? अन्य दूसरे धर्मों से यह किस रुप में भिन्न है ?

यज्ञ गुरु : संसार के अन्य प्रमुख धर्म या पंथ पुरुष प्रधान हैं । अर्थात उनकी मान्यता में भगवान पुरुष के रुप में हैं इस कारण उन्होनें स्त्री जाति को पुरुष से निचले स्तर पर रखा है और भोग्या मान रखा है । लेकिन सनातन हिन्दू धर्म में स्त्री और पुरुष की समान धारणा है । इस लिए प्रकृति और पुरुष के संयोग से श्रृष्टि मानी गई है । आज का विज्ञान भी प्लस और माइनस के योग को श्रृष्टि की उत्पत्ति बताता है । इस धर्म में ईश्वर के आकार के बारे में दो मत हैं , पहला मत ईश्वर को निराकार ब्रह्म कहता है । इस लिए ईश्वरका कोई आकार ही नहीं है । न स्त्री न पुरुष । दूसरा मत है कि ईश्वर साकार है तब तो ईश्वर का आधा नारी और आधा स्त्री रुप अर्थात अर्धनारीश्वर रुप होता है । अर्धनारीश्वर मूर्ति और तस्वीर हमने देखा ही है ,पूजी ही है । इसमें देवी और देवता दोनो की आराधना होती है । और सच पूछो तो देवता से पहले देवी की ही आराधना होती है । इस सिद्धान्त में नारी को पुरुष की तुलना मे उच्च स्तर पर रखा गया है, जिसकी वजह से **यत्र नारिस्य पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता** कहा गया है । यह मान्यता संसार में और कहीं भी नही है । संसार में समानता का सिद्धान्त इसी सनातन धर्म की देन है । और यूरोप अमेरिका जैसे विकसित और समानता के सिद्धान्त की सबसे अधिक वकालत करने वाले देशों को अपने देश में प्रचलित धार्मिक मूल्य और मान्यताओं को इस कसौटी पर पुनरनिरिक्षण करना चाहिए ।

देखो । हमलोग जिस वैदिक सनातन धर्म में हैं, विश्वका प्राचीनतम धर्म है, लेकिन प्राचीनता के कारण से ही इसे मानने और नमान्ने की बात नही है । धृ धारणे धातु में मन प्रत्यय लगाने पर धर्म शव्द शिद्ध होता है । धारयात धर्मम् इत्याहु धर्मम् धारयते धिया: अर्थात आदमी के धारण करने योग्य वैदिक सनातन विचार ही धर्म है । अर्थात **"धारण करने योग्य विचार और व्यवहार" धर्म है ।**

वह विचार क्या है ? यदि यह प्रश्न किया जाय तो हम कह सकते हैं कि :

(१) सर्व जन हिताय सर्व जन सुखाय ।

(२) उदारचरित्रानामतु वसुधैव कुटुम्बकम् ।

अर्थात उदार चरित्र से ही विश्व बन्धुतत्व कायम होता है ।

हिन्दू धर्म को चार वर्ग में देख सकते हैं ।

१ , वेद प्रणीतो धर्मः । वेद द्वारा प्रमाणित काम व्यवहार अर्थात आहार विहार और आचरण । वेद वेदज्ञ । वेदका अर्थ ज्ञान होता है । ज्ञान चरम सीमा में पहुँचने पर विज्ञान होता है ।

२ , शास्त्र निर्दिष्टो धर्मः विभिन्न धर्मावलम्बी को अपने शास्त्रों द्वारा निर्देशित की हुई बात मानना धर्म है ।

३ , कुलाचारणे कर्तव्यपालनम् धर्म : कुल की परम्परा में चलने वाली बातें मानना धर्म है ।

४ , देश काल समाजस्य नियम परिपालनम् धर्म : समाज का नियम अदेश और देश का विद्यमान कानून मानना धर्म है । तद् विपर्य अधर्मः । उसके विपरीत जाना अधर्म है ।

"हिंसायाम् दूषण इति हिन्दू" अर्थात जो हिंसा नहीं करता है वा हिंसा में विश्वास नही करता है वह हिन्दू है । इसका अर्थ **दया** हिन्दुत्व के मूल तत्व में से एक प्रमुख तत्व है ।

हिन्दु धर्म में इतने सूक्ष्म और गूढ विचार हैं, आत्माका जिस तरीके से निरीक्षण किया जा सकता है, इसमें दया, सहिष्णुता और सह अस्तित्वका जो स्थान है वह अन्य धर्मों में नहीं दीखता है । यह धर्म, चूँकि मानव जीवनको उत्कृष्ट बनाने का आधार है, इस कारण इसका विस्तार भी ज्यादा है ।

गायत्री : लेकिन हिंसा तो हिन्दू धर्म में भी होती है । बलि देने और माँस खानेका प्रचलन है ।

यज्ञ गुरु : इस धर्म में राज्य कार्य संचालन और युद्ध में विजय पाने के लिए और क्षेत्रीय जाति के हित के लिए विकसित शाक्त सम्प्रदाय में और तान्त्रिक प्रक्रिया में तथा मनुस्मृति की व्यवस्था के अनुसार यज्ञ में ब्राह्मण द्वारा शास्त्र सम्मत हिंसा को मान्यता मिली थी इसका अलग ही इतिहास है और सिद्धान्त है । तसर्थ उसको हिंसा नहीं माना गया है । लेकिन अब तो किसी प्रकार की हिंसा को सभ्य समाज अच्छा नहीं मानता है । यज्ञ में होने वाली बलि और विवेक जिसे स्वीकार न करे, ऐसे प्राचीन विचार और व्यवहार को विकृति ही माना जाता है ।

दीपेन्द्र : आजकल हिन्दू धर्म के प्रति अरुचि और अन्य धर्मों के प्रति आकर्षण बढता दीखता है । इसका कारण क्या होगा ?

यज्ञ गुरु : किसी भी चीज को अच्छा या बुरा मान लेने से पहले हमको उस चीज के समग्र पक्षका अध्ययन करके अनुसन्धान और चिन्तन की कसौटी पर कसकर ठीक बेठीक देखना चाहिए । धर्म के बारे में भी ऐसा ही करना चाहिए ।

किसीको अच्छा या बुरा साबित करने के दो उपाय होते हैं । एक तो अन्य व्यक्तियों द्वारा किसी चीजका अध्ययन अनुसन्धान करके उसे ठीक मान लिया है तो उनका विश्वास कर लिया जाय और खुद कोई झन्झट न उठाई जाय । उन्हीं की बातको मान लिया जाय । **"महाजनो येन गतो स पन्था ।"** कहा भी गया है । अन्य नये धर्मों में प्रायः ऐसा ही है । प्रर्वतक की बात पर सभी लोग श्रद्धा पूर्वक यकीन करते हैं ।

दूसरा उपाय यह है कि स्वयं किसी चीज के बारे में अध्ययन, अनुसन्धान किया जाय । और ठीक दिखने वाले नियमों या व्यवहारों को मान लिया जाय । जो बेठीक दिखे उसे छोड दिया जाय ।

हिन्दू धर्म पूर्ण प्रजातान्त्रिक है । इसमें तर्क-वितर्क, विचार-विमर्श तथा व्यक्तिगत चिन्तन को सम्मान दिया जाता है । इस लिए हमलोगों को भी या तो इसके सिद्धान्तोंको आँख मूँदकर विश्वास कर लेना चाहिए या तो यदि तर्क वितर्क और शंका उठाई जाती है तो इस धर्म के भीतरी भाग में प्रवेश करके अध्ययन अनुसन्धान और इसके सिद्धान्तोंका प्रयोग और पालन करके परीक्षण करना चाहिए तब यदि यह धर्म ही गलत दिखता है तो अन्य धर्म की ओर देखना उचित होगा इसमें भी आँख मूँदकर तुरन्त किसी अन्य धर्म को स्वीकार करना तो नितान्त मूर्खता होगी । यदि कोई अपना धर्म छोड रहा है तो अन्य सभी प्रमुख धर्मो के नीति, सिद्धान्त, आदर्श और व्यवहारको परीक्षण करके सर्व श्रेष्ठ कौन दिखता है ? तब उसके चयन की बात आ सकती है । "यह धर्म खराब है फलाना धर्म अच्छा है" इस तरह की अनर्गल बकवास करने वाले को स्वयं अपने आपका ही परीक्षण करना चाहिए कि वह इस धर्मको कितना जानता है, कितना समझा है, कितना पढा है ? और इसके सिद्धान्तों को जीवन में उतारने से कैसा परिणाम प्राप्त हुआ है ? क्या वह स्वयं इस धर्म के बारे में उठी सभी जिज्ञासाओं का उत्तर दे सकता है ? क्या धर्म जैसे गहन विषयका अध्ययन अवलोकन करने की क्षमता और पात्रता उसमें है ? वह स्वयं कितना योग्य है ? अन्य धर्मो को समझने की योग्यता, वातावरण और सामाजिक परिस्थितियां कैसी हैं ? वह कहाँ बैठकर किस धर्म की चर्चा कर रहा है ? उसको अपना धरातल और अपने मूल्य मान्यताओं की जानकारी है ? कहीं वह लोक परम्परा प्रचलन और किसी व्यक्ति के कार्य व्यवहार को ही तो धर्म नहीं मान बैठा है ? वह अपने को कितना निष्पक्ष रखकर चिन्तन कर सका है ?

रुपकः तो फिर दूसरे धर्म की बात न की जाय ?

यज्ञ गुरु : क्यों न करें ? अवश्य करें । लेकिन जो बातें मैने कही हैं उस अनुसन्धानात्मक दृष्टिकोणको अपनाना चाहिए ।

दीपेन्द्र । लेकिन हिन्दू धर्मावलम्बी, खास करके दलित और जनजाति हिन्दू धर्म में छुवाछुत और विभेदीकरण होने के कारण इस धर्म से पीडित हैं । और यदि यह छुवाछुत और विभेद हटा भी दिया जाय तो यह लोग हिन्दू धर्म के ब्राह्मण, क्षेत्री या वैश्य किस वर्ण में लिए जाएँगे ? इस समस्या के कारण ये लोग तीव्रता से अन्य धर्म में प्रवेश कर रहे हैं । इस पर हिन्दू धर्माधिकारी क्यों नही गम्भीर हैं ?

किशोर : राजनीतिक क्रान्ति जैसी सरल सामाजिक क्रान्ति नही होती है । यूरोप में बारहवीं से पन्द्रहवीं शताब्दी तक धार्मिक-सामाजिक रुपान्तरण की प्रक्रिया में करीब चार सौ वर्ष लगा था । धर्मसत्ता और राज्य सत्ता के द्वन्द में खून की नदी बही थी । और आज भी काला गोरा तथा कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट जैसे कई विभेद हैं । तो हिन्दुओं को भी आन्तरिक विभेद और विकृतियों के निवारण मे कुछ समय तो लगेगा ही । परिवर्तन हो ही रहा है । औरों से हमारी गति तीव्र है, सकारात्मक है और शान्तिपूर्ण है । हम सभी को अपने अपने स्तर से योगदान करना चाहिए । धर्मान्तरण करके भागना इस समस्याका समाधान तो नही है न ? यह धर्मान्तरण खुद अपने आपको धोखा देना है और भावी पुस्ता को अन्धकार में ढकेलना है । इसका शास्त्रीय कथन देखें -

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।

स्वधर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मो भयावह ॥

गीता ३-३५

(दूसरे का धर्म उत्थान अवस्था में ही क्यों न हो लेकिन उससे अपना धर्म अच्छा होता है । अपने धर्म में बल्कि मृत्यु श्रेष्ठ है लेकिन दूसरे का धर्म भयावह होता है)

कोई कोई धर्म के अनुयायी तो दूसरे व्यक्ति का धर्म नष्ट करके अपने धर्म में खींचने को ही धर्म कहते हैं । दुनिया के तमाम देशों मे अंग्रेज या तो व्यापारी बनकर या धर्म गुरु बनकर गए और अन्त में राज्य सत्ता पर कब्जा किया । देश का ही शोषण और दमन हुआ । जनता के पुर्खों ने धर्म के नाम पर अंगरेजों से जो सहायता स्वीकार की वही अभिशाप बन गया । इस लिए धर्मान्तरण कराने वाले किस उद्देद्श्य से दूसरे लोगों का धर्मान्तरण करा रहे हैं ? उनकी रणनीति पर भी ध्यान देना चाहिए ।

वास्तव में ,मेरे विचार में किसी अन्य धर्मावलम्बी को अपने धर्म में धर्मान्तरण करवाने की आवश्यकता ही क्यों ? कोई कोई यह कहते हैं कि हमारे धर्म में लिखा है कि जो लोग भूलकर या तो किसी पाप की वजह से या किसी शैतान की शाया

पडने से अन्य किसी धर्म में हैं तो उन भटके हुए लोगों को वहाँ से मुक्त करके इस धर्म में लाना हमारा कर्तव्य है । लकिन यह बात तो बिल्कुल गलत है ,धर्म क्षेत्र में तो ऐसी बात हो ही नहीं सकती है । भला किसी को अपने धर्म में खींचकर लाना कौन सी मानवता और कौन सा धर्म हो सकता है ? क्या एक्कीसवीं शताव्दी के मानव की परिष्कृत बुद्धि इस बात को स्वीकार कर सकती है ? ऐसी बातें तो किसी योजना के कारण ही की जाती होंगी ।

नेलशन मण्डेला ने लिखा है -"वे लोग जब हमारे यहाँ आए तब उनके हाथ मे बाइबल और हमारे हाथ में जमीन थी लेकिन आज हमारे हाथ में बाइबल और उनके हाथ में जमीन है ।"

दूसरी बात । संसार भर में फैले हुए मुसलमान सयकडों भाषा, भेष भूषा, और अलग अलग रहन सहन में हैं लेकिन उनको एकता के सूत्र में "कुरान' ने बाँध रखा है । वह कुरान अरबी भाषा में है । इसलिए दुनिया के किसी भी कोने में रहने वाला मुसलमान अरबी भाषा समझे या न समझे लेकिन उस भाषा पर अटूट श्रद्धा रखता है और जब कुरान पढा जाता है तब वह धैर्य और श्रद्धापूर्वक सुनता है । इस प्रकार अरबी भाषा ने मुश्लिम एकता कायम रखी है । लेकिन संस्कृत जो देव भाषा है, वेद पुराणों की भाषा है,ज्ञान विज्ञान का भण्डार इसी भाषा में लिपिबद्ध है, इसपर श्रद्धा की बात छोडो, हिन्दुओं ने संस्कृत पढना ही छोड दिया है,और जो संस्कृत पढता है उसे परम्परावादी और मूढ समझा जाता है । हिन्दू एकता की एक सशक्त डोरी टूट चुकी है । कितने दुखकी बात है कि अंग्रेज, और पश्चिमी विज्ञान जब संस्कृत को महत्वपूर्ण बताने लगा है तो हिन्दू इससे दूर भाग रहा है । गाँधी जी ने लिखा है कि मैं तो कहता हूँ कि किसी भी हिन्दू बालक को संस्कृत के अच्छे अभ्यास से वंचित नही किया जाना चाहिए, यह पाप है, अन्याय है । आज के दिनों में भारत तो भारत , नेपाल मे जहां लगभग ९० प्रतिशत जनता हिन्दू है वहाँ कुछ राजनीतिक चालबाज और लोभियों ने अपने स्वार्थवश भावी पुस्ता के प्रति जो सांस्कृतिक अन्याय कर रहे हैं यह जघन्य अपराध है ।

घनघोर वर्षा और काली अंधेरी रात । एकान्त निर्जन वन्य प्रदेश में अवस्थित छोटा सा मन्दिर । बादल की गरज और बिजली की तडक से वातावरण भयानक था । भूस्खलन हो रहा था इसलिए किसी भी क्षण मंदिर बहकर नीचे नदी में जा सकता था । इस लिए सब लोग भयग्रस्त थे । लेकिन वे लोग धर्म और दर्शन के चिन्तन में लगे थे इसलिए भयानकता का प्रभाव कुछ कम लग रहा था । आदित्य के प्रश्न से मौनता टूटी -

आदित्य : राम त्रेता में और कृष्ण द्वापर में आए । उससे पहले भगवान के किस नामका स्मरण होता था ?

यज्ञ गुरु : इस प्रश्नका उत्तर बहुत बडा है । छोटकरी में यह जान लो कि भगवान के हजारों नाम मे से यह नाम भी हैं । और यह नाम आदि काल से ही प्रचलन में हैं

दूसरी बात यह है कि नामी से नाम बडा होता है । समुद्र मे पुल बाँधते समय राम का नाम लेकर फेंके गए पत्थर पानी में तैर रहे थे । लेकिन राम अथवा कृष्ण का जन्म होने के बाद ही राम और कृष्ण शव्द का जन्म नहीं हुआ होगा उनके जन्म से पहले से ही इन शव्दोंका प्रचलन रहा होगा वही नाम इनको दिया गया होगा । राम चरितमानस का उदाहरण देखो :

राम सकल नामन ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन वधिका ॥

वास्तव मे भगवान को शव्द द्धारा प्रकट नहीं किया जा सकता है और जिस किसी भी शव्द से या बिना शव्द ही उन्हें पुकारा जाय, याद किया जाय तो हमारी आवाज भगवान तक पहुंच जाती है । शव्द नही भाव का महत्व होता है । । **तुलसीकृत रामायण के उत्तर काण्ड** में काक भुसुण्डीका देखा हुआ कौतुक दोहा **७९ क से ८२ क** के बीच की निम्न चौपाई मनन योग्य है -

लोक लोक प्रति भिन्न विधाता । भिन्न विष्नु सिव मनु दिसित्राता ॥

नर गंधर्व भूत वैताला । किंनर, निसिचर, पसु, खग, व्याला ॥

दसरथ कौसल्या सुनु ताता । विविध रुप भरतादिक भ्राता ॥

प्रति ब्रह्माण्ड राम औतारा । देखेउँ बाल विनोद अपारा ॥

राम उदर देखेउँ जग नाना । देखत बनइ न जाइ बखाना ॥

तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना । मायापति कृपाल भगवाना ॥

आदित्य : शास्त्र में और व्यवहार में भी विष्णु, ईश्वर नारायण, ब्रह्म, स्कम्भो और भगवान जैसे शब्द प्रयुक्त होते हैं । क्या यह सब एक ही हैं ?

यज्ञ गुरु : हाँ यह सब एक ही हैं । इस प्रश्न के उत्तर में एक बडी पुस्तक तयार हो जाएगी तसर्थ अभी कुछ प्रमाण भर देखो -

विष्णु : ये सामवेद में उल्लेखित देवता हैं । इस शब्द की उत्पत्ति विष्लृ धातु से हुई है जिसका अर्थ है फैलना या सर्व व्यापक होना ।

महाभारत ५।७०।१३।१४

ईश्वर : अथर्व वेद में इनको देवता कहा गया है । और वैदिक कोष में इसका अर्थ स्वामी या मालिक है । इसी कारण यह शब्द कालान्तर में भगवान का पर्यायवाची बन गया है ।

"यस्य वाक्यं स ऋषिर्या तेनोच्यते सा देवता"

ऋ१०।१०।सा भा

नारायण : नार माने पानी । आयन माने निवास स्थान पानी के ऊपर निवास करने वाले विष्णु के लिए यह शब्द प्रचलित है ।

भगवान : ऋग, यजुर और अथर्व वेद में भग शब्द द्वादस आदित्य के रुप में लिया गया है । पर ब्रह्म परमात्मा के लिए भगवान शब्द ही अधिक प्रचलित है ।

ब्रह्म : ब्रह्म परिवृढं सर्वतः अर्थात जो सर्वत्र व्याप्त है वह परब्रह्म है ।

सर्व खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत ।

छान्दोग्य उपनिषद ३।१४।१

(सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई है र यह जगत उसी में विलीन हो जाता है)ऐसे ही **वृहदारण्यकोपनिषद** में जो स्वयं अनन्तगुना विशाल है और दूसरे को भी विशालता प्रदान करने मे कियाशील रहता है वह ब्रह्म है । ऐसा कहा गया है ।

स्कम्भो : **स्कम्भो दाधार द्यावा पृथिवी उभे इमे स्कम्भोदाधारोर्वऽन्तरिक्षम् ।**

स्कम्भो दाधार प्रदिशःषडुर्वीः स्कम्भ इदं विश्वं भुवनमा विवेश ॥

अथ ७।२८७२।३५

(विशाल अंतरिक्ष सहित सभी दिशाओं को स्कम्भ ने धारण कर रखा है और स्कम्भ ही इस विश्व में प्रविष्ट है अर्थात उस चेतन और परम व्योम में सभी समाए हुए हैं और सभी में वह ही समाहित है)

एवं प्रकार से उस महाशक्ति-परब्रह्म परमेश्वर के लिए बहुत से शब्द प्रचलित हैं । इन सब में भगवान शब्द सर्वाधिक प्रचलित हुआ है ।

आदित्य : मंत्र और इसके प्रभाव के बारेमें कुछ बता दीजिए ।

यज्ञ गुरु : मन्त्र विज्ञान एक स्वतन्त्र विषय है । इसलिए इसको समझाने का यह अवसर तो नहीं है । लेकिन इतना जान लो कि विश्व ब्रह्माण्ड Negative और positive दो तरह ही उर्जा से गतिशील है ऋषियों द्वारा रचित मन्त्र positive उर्जा को एक जंजीर जैसे गुच्छ बनाते हुए साधक तक खींच लाते हैं और अनुकूल परिस्थियों का निर्माण हो जाता है । प्रमाण देखें-

इन्दुः प्रविष्ट चेतनः प्रियः कवीनां मती । श्रृजदश्वं रथीरिव ॥

ऋ. ६४।८१८८।१०

(मन्त्र शक्ति तथा संकल्प शक्ति से "चेतनायुक्त प्रवाह" को ब्राह्मी चेतना अर्थात सूक्ष्मदर्शी और दूरदर्शी विवेक बुद्धिद्वारा नियंत्रित करके जीव जगत में वांछित ढंग से नियोजित किया जा सकता है)

इस बात को थोडा सा स्पष्ट करना चाहूँगा । आकाश अर्थात महाशून्य में ग्रह,उपग्रह,नक्षत्र,तारा मंडल, आदि अवस्थित हैं । हमारे प्राचीन ऋषि महर्षियों ने इस महाशून्य का लम्बे समय तक अध्ययन किया और यह पाया कि इसमें भँवरा के जैसी गुनगुनाहट निरन्तर गुन्जायमान हो रही है । आज का भौतिक विज्ञान भी इस बात को स्वीकार कर चुका है । उनलोगों ने यह सुनिश्चित किया कि इस ध्वनि से ग्रह,उपग्रह,नक्षत्र तथा आकाश गंगा आदि का निर्माण हुआ है और उसी ध्वनि से पृथ्वी पर जीवन विकसित हुआ है । इसी लिए ईश्वर को शव्द ब्रह्म भी कहा जाता है । सूर्य सम्पूर्ण जीव जगत की श्रृष्टि और चन्द्रमा रस का वितरण करके सभी का पोषण करते हैं और राशि तथा नक्षत्र जनजीवन को प्रभावित कर रहे हैं । ध्वनि का सूक्ष्म विश्लेषण करते जाने पर ध्वनि में वर्ण (अक्षर Alphabet) रहते हैं और एक वर्ण का दूसरे वर्ण के साथ घनिष्ठ चुम्बकयि सम्बन्ध बना हुआ दिखाई पडता है । इन वर्णों में से एक वर्ण विशेष को दूसरे वर्ण विशेष के साथ जोड दिया जाय तो जो शव्द या शव्दसमूह निर्मित होता है उस शव्द या शव्दसमूह को हम विशेष स्वर और लय में उच्चारित और बारम्बार उच्चारित करने पर (जिस वस्तु का जैसा स्वरुप और प्रकृति होती है वह वैसा ही स्वरुप और प्रकृति की वस्तु को आकर्षित करता है इस नियम के हिसाब से) ईथर तत्व आदमी के इस उच्चारण को आकाशीय वर्ण तरंग के साथ जोड देता है और आदमी के निरंतर उच्चारण से एक मन्त्र गुच्छक या वर्ण तरंग अथवा ऐंठती हुई डोर साधक की ओर खिंचने लगती है इस खिंचाव में आकाशीय वर्ण जिसने अपने स्वरुप के अनुसार जैसा और जितना आकाश क्षेत्र कव्जा कर रखा है, इस क्षेत्र के विभिन्न आकार के स्वरुप के संयोजन से एक विशेष आकृति वाला महाशक्ति या सकारात्मक उर्जा पिण्ड ,जिसको सरल भाषा मे देवता भी कह सकते हैं,साधक की ओर खिंचता हुआ चला आता है और यदि साधक के पास पात्रता और क्षमता है तो वह उस उर्जा को धारण करके अपने इच्छा के अनुसार काम करवा सकने की अवस्था श्रृजित हो जाती है । इसी विधि और प्रकिया सम्बन्धी विज्ञान को मन्त्र विज्ञान कहा जाता है । ऋषियों ने अपनी साधना और योगबल द्धारा जैसे आकाश में १२ राशियाँ और २७ नक्षत्र को देखा उसी तरह तरंगित शव्दों को भी देखने मे सफल होने के कारण ऋषियों को वेद में मन्त्रद्रष्टा कहा गया है ।

आदित्य : पाप पुण्य की सब से छोटी और सारगर्भित व्याख्या क्या हो सकती है ?

यज्ञगुरु : इस्लाम और क्रिश्चियन में पाप करने के बाद यदि पापी भगवान की शरण में जाता है तो पाप मुक्त होता है ऐसा कहा जाता है । लेकिन हिन्दू मे पाप मुक्त होने का प्रावधान नहीं है । इसमें तो कहा गया है कि पाप मत करो और पाप करोगे तो दण्ड पाओगे ।

असद भूम्याःसमभवतः तद्यामेति महद्व्यच :।

तद् वै ततो विधूपायत् प्रत्यक कर्त्तारमृच्छतु ॥

अथ ४।१९।७४८।६

(दुष्टतापूर्ण कर्म छोटा बडा जैसा भी है, अंत में कर्म करने वाले का सर्वनाश कर देता है उसे कर्मका परिणाम भोगना ही पडता है)

पाप पुण्य की सरल मान्यता यह है कि-

अष्टादश पुराणेषु , व्यासस्य वचनं द्वयं ।

परोपकार पुण्याय, पापाय पर पीडनम ॥

आशु : अर्थात ?

यज्ञ गुरु : **चार वेद षटशास्त्र में, बात लिखी है दोय ।**

दुख दीने दुख होत है, सुख दीने सुख होय ॥

गलतका परिणाम गलत होगा । अच्छेका फल अच्छा मिलेगा । दूसरोंको जो सुख देगा वह स्वयं भी सुख पाएगा और दूसरे को दुख देने वाला दुख ही पाएगा । यह अकाट्य सत्य है । इसी लिए तो :

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः ।

मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥

ऋ. १।९०।९८५ ।७

(संसार में ऐसे काम करो जिससे सभीको सुख शान्ति और प्रशन्नता मिले) कहा गया है ।

आशु : पुण्य पापका यह छोटा सूत्र अच्छा है । अब इस वर्तमान संकट निवारणका भी कोई सूत्र है ?

यज्ञ गुरु : है अवश्य है । पहली बात यह है कि हमारे शास्त्र में आनन्दी जीवन और भगवत प्राप्ती के तीन मार्ग बताए हैं । पहला ज्ञान मार्ग जो अत्यधिक कठिन है और जोखिमपूर्ण भी है । दूसरा कर्म मार्ग- यह भी सरल तो नहीं है और तीसरा भक्ति मार्ग है । यह मार्ग सरल तो नही है लेकिन इसे सरल बनाया जा सकता है ।

भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है - तुम अपनी इच्छा आकांक्षा और कर्म, सब मुझे समर्पित कर दो और मेरे शरणागत हेा जाओ तब मैं तुम्हारी समस्त जिम्मेवारीयोंको अपना लूँगा । और तुम पूर्ण निर्भय हो जाओगे ।

उदाहरण के लिएं दुशासनने द्रोपदीको नंगी करने के लिए उनकी साडी खींचने लगा । द्रोपदी ने पहले अपने पतियोंको, फिर राजसभाको पुकारा लेकिन जब किसी ने मदत न की तो उन्होंने अपना बाहुबल दिखाया और साडीको कसकर पकडे रखा । लेकिन जब हाथ से साडी छूट गई तब दाँत से साडी पकड ली और जब दाँत से भी साडी छूटी और दूसरा कोई सहारा न रहा तब द्रोपदी ने निरुपाय निसहाय अवस्था में और सांसारिक शक्ति और सामर्थ्य से निराश होकर जब भगवानको एक मात्र सहारा माना और आर्तस्वर में नितान्त एकाग्र चित्त होकर अपने को श्रीकृष्ण में समर्पित करके उनको पुकारा तब दस हाथ की साडी बढते बढते लाखों हाथ लम्बी होती चली गई । दुशासन साडी खीचते खींचते थक गया लेकिन द्रोपदीकी साडी नखुल सकी । उनकी लाज बच गई ।

अब सोंचो । जब तक द्रोपदी ने संसार के बल मदत की आशा में थी तब तक भगवान दिखाई नही पडे । ज्ञान और कर्म दोनो से जब काम नहीं चला तब वह भक्तिमार्ग में ईश्वर के शरणागत हो गई और जब पूर्ण समर्पित हुई तो तुरन्त लाज की रक्षा हुई ।

एक बार एक घडियाल ने नदी में एक हाथी का पैर पकड कर खीचने लगा । उस हाथी ने एकाग्र भाव से आर्तनाद करते हुए भगवान की पुकार लगाते ही भगवान ने उसकी रक्षा की । ध्रुव और प्रह्लाद की कथा भी सांदर्भिक है । तुलसीकृत रामायण में भी भगवान ने भक्त के बारे में कहा है -

“करौं सदा तिनकै रखवारी । जिमि बालक राखै महतारी ॥

धर्म पर संकट पडने पर भगवान स्वयं दौडकर आते हैं । इस बात का शास्त्रीय प्रमाण देखें ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं श्रजिम्याहम् ॥

श्रीमाद्भगवद्गीता ४।७।

लेकिन श्रद्धा और समर्पण का तात्पर्य भगवान के प्रति श्रद्धा और विश्वास व्यक्त करके उनके नीति नियम में चलना ही नहीं है , यह तो पूर्ण चैतन्यता, सतर्कता और कर्म की स्थिति होती है । पूर्ण समर्पण लक्ष्य मे पहुँचाता ही है । इसमे शंका की कोई जगह ही नहीं है । यह पूर्ण अनुभव और प्रयोग सिद्ध तथ्य है । इस लिए इसको कायदे से समझ लेना चाहिए । समर्पण के ६ नियम होते हैं :

१, अनुकूल चिन्तन करना : इसका अर्थ है भगवान की इच्छा के अनुकूल चिन्तन करना । उदाहरण देखें । भगवान राम और लक्षमण कहीं जा रहे थे । रास्ते में एक तालाब दिखा । उन्होंने तालाब में हाथ मुख धोने के लिए हाथ का धनुष किसी दीवाल के सहारे खडा करके तबलाब में गए और जब मुख हाथ धोकर बाहर निकले और धनुष उठाया तो धनुष के निचले नोक पर खून लगा दिहाई दिया । ऐसी क्या बात है ? नीचे देखने पर जमीन के नीचे बैठा हुआ एक मेढक दिखा जिसकी पीठ पर धनुष का नोक गडने से खून निकल रहा था । राम ने पूँछा कि तुम शुरु में तत्काल क्यों नही चिल्लाए ? मेढक ने कहा कि जब आप ही घोंच रहे हैं तो मैं किसी को क्यों पुकारुँ ?क्यो. चीखूँ ? आपकी इच्छा के विरुद्ध क्यों बोलूँ ?

दूसरा उदाहरण देखें : यात्रियों को नदी पार करवा रही एक नाव तेज हवा के अंधड में फँसकर बेकाबू हो गई और नदी की लहरों से नाव मे पानी भरने लगा । यात्री नाव का पानी बाहर की ओर उलीचने लगे लेकिन उसी नाव पर सवार एक महात्मा बाहर का पानी नाव के अन्दर उलीचने लगा । जब लागों ने पूँछा कि यह क्या कर रहे हो ? तब महात्मा ने कहा कि भगवान की इच्छा पूरी करने में योगदान कर रहा हूँ । भगवान चाहेंगे तो नाव बचेगी अन्यथा डूब तो रही ही है । जैसे हवा चलने पर सूखे हुए पत्ते को हवा जिस दिशा में उडाती है वह पत्ता उसी दिशा में उड जाता है , अपना बल बिलकुल प्रयोग नही करता है । यह वैसी ही अवस्था है ।

२ प्रतिकूल चिन्तन न करना : उदाहरण देखें । एक दिन संत तुकाराम के घर में खाने के लिए कुछ नहीं था । वे गाँव में घूम रहे थे तो किसी ने उन्हें एक समूची ऊख दी । केवल ऊख हाथ मे लेकर घर वापस आए हुए पति पर पत्नी अत्यधिक क्रोधित हो गईं और उनके हाथ से ऊख छीनकर उन्ही के शिर पर दे मारा । ऊख टूटकर दो टुकडे हो गई । तुकाराम जोर जोर से हँसने लगे । उन्होने कहा तुमने अच्छा ही किया इसे दो टुकडे तो करना ही पडता । अब एक तुम चूस लो एक मैं चूस लेता हूँ ।

एक और उदाहरण देखो । संत नरसिंह मेहता की सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई ,संतान परिवार सब महामारी मे मर गए । उन्होंने कहा कि भगवान ने भजन के रास्ते में आने वाली सभी बाधाओं को हटा दिया है ।

तीसरा उदाहरण , गुरु शिष्य किसी पेंड के नीचे विश्राम कर रहे थे । शिष्य सो गया । उसी समय एक शर्प आया उसने गुरु से कहा कि मैं इस शिष्य के खून पीने का हकदार हूँ । यही प्रारब्ध है । गुरु ने कहा कि तुम इसे काटोगे तो यह तो मर जाएगा । अच्छा तो यह होगा कि मैं ही इसका खून निकाल दूँ और तुम पीकर चले जाओ । गुरु ने शिष्य के गले में थोडा चीरा लगाया और खून निकालकर शर्प को दिया । उसने खून पिया और चला गया । शिष्य के जगने पर गुरु ने घटना के बारे

मे पूँछा तो शिष्य ने कहा कि मुझे सब कुछ मालूम है,मैने शर्प से आपकी वार्ता सुनी है । गुरु ने कहा कि तब तुम उस समय बोले क्यों नही ? शिष्य ने कहा कि मैं जब गुरु में समर्पित हो चुका हूँ तब फिर गुरु के काम में प्रश्न क्यों किया जाय ?

३ , भगवान के रक्षकत्व में विश्वास : भगवान मेरी जैसे भी रक्षा करेंगे इस बात मे पूर्ण विश्वास । उदाहरण देखें । महाभारत में भीष्म ने मैं कल अर्जुन को मारुँगा ऐसी प्रतिज्ञा की । चारों तरफ सन्नाटा छा गया । पाण्डव सेना के दुख का तो कोई पारावार ही न था । रात हुई किसी ने खाया पिया नहीं । सब अपने अपने शिविर में चिन्तित बैठे थे । कोई सो नही पा रहा था । आधी रात बीत गई । कृष्ण ने सोंचा कि अर्जुन के शिविर में चलकर कुछ परामर्श किया जाय । वे जब वहाँ पहुँचे तो उनको यह देखकर बडा अचम्भा हुआ कि पूरी सेना तो जग रही है । लेकिन जिसकी मृत्य कल निश्चित है वह अर्जुन तो बेफिक्र गहरी नींद में सो रहे हैं । कुष्ण ने अर्जुन को जगाया और लताडते हुए कहा कि यह सोने का समय है कि कोई युक्ति करने का समय है ? अर्जुन ने हँसकर कहा कि मेरी सम्पूर्ण जिम्मेदारी जब आप ने ले रखी है तो मैं क्यों शिर दुखाऊँ । जब आप हैं तो मुझे कौन मार सकता है । आगे आप जानें आपका काम जाने । मुझे शुबह युद्ध करना है । मैं इतना ही जानता हूँ । मुझे अब सोने दीजिए ।

अर्जुन अपने प्राण रक्षा होने में कितने निश्चिन्त हैं । उन्हे भीष्म प्रतिज्ञा का कोई भय ही नही है । उन्हें तो कृष्ण ने शुरु मे ही कह दिया था कि तुम युद्ध करो बाकी जीत हार जीवन मुत्यु सब मेरे हाथ में है । अर्जुन को उनकी बात पर पूर्ण भरोसा है । इस लिए वे तो जीवन मृत्यु के बारे में सोंचते ही नहीं हैं । यह है भगवान के रक्षकत्व पर विश्वास ।

४ शरणागत की रक्षा होने के बारे में विश्वास : द्रोपदी चीरहरण के समय में अन्तिम अवस्था में जब द्रोपदी ने सांसारिक शक्ति को छोडकर भगवान पर पूर्णतया आश्रित हुई तब तत्काल उनकी रक्षा हुई । यह प्रसंग तो आ ही चुका है । अर्थात भगवान एकमात्र रक्षक हैं यह अनन्य भाव रखना ।

५ , सम्पूर्ण संसार और सांसारिक वस्तुएं भगवान की हैं इस मान्यता को बनाए रखना : हमको इस संसार मे जो भी प्राप्त हो रहा है वह कुछ भी मेरा नहीं है । सब भगवान का है और मेरे पास भगवान की धरोहर है इस बात को मान कर चलना चाहिए । इस पर दृढ रहना चाहिए ।

६ अपने शुभ कर्मों को प्रकाशित न करना : अपना तन मन धन अर्थात सर्वस्व मानव की सेवा में अर्पण कर दिया हो तो भी इस बात का खुलासा नहीं करना चाहिए । पुण्य कर्मों को भूल जाना चाहिए । यदि उसके बदले में कीर्ति पाने की

कामना की जाती है तो पुण्य क्षय हो जाता है । हमको और कोई देता है तो वह यश और कीर्ति है लेकिन उसे खुद ही प्राप्त किया जाय तो वह स्वार्थ होता है ।

इन ६ नियमों का जो पालन करता है वह तप कर रहा होता है और वह निसंदेह भगवान की कृपा प्राप्त कर लेता है ।

इस समय यहाँ ध्रुव, प्रह्लाद और द्रोपदी के जैसी ही विषम परिस्थिति है । इस संसार की कोई शक्ति या व्यक्ति द्वारा यहाँ रक्षा करने की अवस्था ही नहीं है । अब एक मात्र सहारा भगवान का है । जिसके लिए भक्तिमार्ग ही उपयुक्त है । तुम लोग अपने को परमात्मा के सहारे, पूर्ण समर्पित हो सकते हो तो आर्तस्वर से पुकारो, त्वम् शरणम् कहो । अपनी इच्छा, आकांक्षा को छोडदो, प्राण रक्षा के लिए भी याचना नकरो । पूर्णतया ईश्वरमय हो जाओ । यह प्रकृति, जलवर्षा, आँधी तूफान, नदी, पहाड, भूस्खलन सब वही ईश्वर तो हैं । तुम्हारे समर्पण और आर्तनाद से भगवान तुम्हारे हित में जो अच्छा होगा वही करेगें । कोई मन्त्र जानते हो तो जपो । अथवा जिस देवी देवता के नाम पर श्रद्धा है उसे ही पुकारो, कुछ न हो सके तो सब से सरल विधि हरि नाम संकीर्तन करो -

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

सामूहिक संकीर्तन चमत्कारिक होता है । इसमें अकल्पनीय शक्ति है । लो शुरु हो जाओ ।

यज्ञ गुरु की बातों से लोगों में आशा का संचार हुआ । अन्तिम दवा मिल गई । फिर तो मन्दिर में राम नाम संकीर्तन शुरु हो गया । सभी लोग भावविभोर और तल्लीन होकर पूर्ण श्रद्धा, विश्वास और समर्पण के साथ संकीर्तन करने लगे । एक स्वर, एक ध्वनि एक ही भावना से वातावरण आन्दोलित होने लगा । वातावरण में एक ध्वनि तरंग, एक कम्पन होने लगा । संकीर्तनकर्ता इतने अधिक तल्लीन हुए कि रात कब बीती और प्रभात की अरुणिमा कब दिखने लगी, किसीको पता ही नहीं हुआ । पूर्व दिशा में प्रकाश दिखाई पडा तो किसी किसी को अपनी स्थिति का ध्यान आया ।

बहुत बडा आश्चर्य घटित हो गया था । एक प्रयोग या परीक्षण ही कहा जाय तो सफल हुआ था । पानी वर्षात बिल्कुल बन्द हो चुकी थी । आँधी तूफान कुछ भी नहीं था । तीर्थ यात्रियों ने मन्दिर से ऊपर के भूस्खलित पहाड को देखा जो मन्दिर सहित सभी को समेटकर नीचे अथाह खाई में पहुँचा देने के लिए ऊपर से खिसक कर मन्दिर के नजदीक आया था और मन्दिर के पास अटक गया था उसे एक

बहुत बडी चट्टान चट्टान ने राक दिया था । वह चट्टान बीच मे न आ गई होती तो वह मन्दिर सहित सब भूस्खलन से दब गए होते ।

सब आश्चर्य चकित और भयभीत थे किसी भी क्षण चट्टान खिसक सकती थी लेकिन यज्ञ गुरु यथावत दीवाल की टेक लगाए, आँखे बन्द किए बैठे थे । उनके ओंठ धीरे धीरे चल रहे थे शायद भगवान नाम जप चल रहा था । आदमियों के कोलाहल से उनकी आँख खुली वे धीरे से मुस्कुराए । उन्होने हाथ की उँगली से मन्दिर के पिछवाडे से बाहर चले जाने का संकेत किया । उपस्थित भक्तों ने यज्ञ गुरु को भी वहाँ से उठने को कहा, अनुनय विनय भी किया, नीचे तक कन्धे पर बिढाकर ले जाने का आश्वासन दिया लेकिन वे मुस्कुराते रहे, रहस्यमय मधुर मुस्कान । मैं यहीं प्रकृति की गोद में इसी मन्दिर में रहूँगा आप लोग जायें मैं भगवान के सानिध्य में हूँ वह बोलते गए और सबको आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ उठाए बिदा करते गए ।

भक्तों ने मन्दिर के पिछवाडे से निकलना शुरु किया बाहर दूर दूर तक देहरादून जानेका रास्ता साफ दिख रहा था । वे लोग अलौकिक संत और दैवी चमत्कार का बखान करते भजन कीर्तन गाते हुए चल पडे देहरादून की ओर ।

समाप्त

वि.सं. २०७१ श्रावण ६ एकादशी